॥ श्रीहरिः ॥

सत्संगकी विलक्षणता



स्वामी रामसुखदास

प्रकाशक—गोविन्दभवन-कार्यालय, गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० २०४३ से २०४९ तक	१,१५,०००
सं० २०५० सातवाँ संस्करण	१५,०००
योग	१,३०,०००

मूल्य—दो रुपये पचास पैसे

मुद्रक—गीताप्रेस, गोरखपुर
फोन नं० ३३४७२१

॥ श्रीहरिः ॥

नम्र निवेदन

प्रस्तुत पुस्तकमें पूज्यवर स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजद्वारा ज़यपुरमें द्वितीय बार चातुर्मास सत्संगके अवसरपर दिये गये विशिष्ट प्रवचनोंका संग्रह है। बीकानेर चातुर्मासका भी एक प्रवचन लिया गया है। ये प्रवचन भगवत्प्राप्तिकी ओर अग्रसर होनेके अभिलाषी सत्संगियों एवं साधकोंके लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। इनमें गूढ़ तत्वोंको बड़ी सरल रीतिसे समझाया गया है। पाठकोंसे निवेदन है कि इन प्रवचनोंका अध्ययन एवं मनन करके इनसे लाभ उठायें।

—प्रकाशक

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

॥ श्रीहरिः ॥

सत्संगकी आवश्यकता

१

एक सत्संगी भाईने एक व्यक्तिसे सत्संगमें चलनेको कहा तो वह व्यक्ति बोला—'मैं पाप नहीं करता, अतः मुझे सत्संगमें जानेकी आवश्यकता नहीं। सत्संगमें वे जाते हैं, जो पापी होते हैं। वे सत्संगमें जाकर अपने पाप दूर करते हैं। जिस प्रकार अस्पतालमें रोगी जाते हैं और अपना रोग दूर करते हैं। निरोग व्यक्तिको अस्पतालमें जानेकी क्या आवश्यकता ? जब हम पाप नहीं करते तो हम सत्संगमें क्यों जायें ? ऊपरसे देखनेपर यह बात ठीक भी दीखती है।

अब इस बातको ध्यान देकर समझें। श्रीमद्भागवतमें एक श्लोक आता है—

निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद् भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥

(श्रीमद्भा० १०।१।४)

'जिनकी तृष्णाकी प्यास सर्वदाके लिये बुझ चुकी है, वे जीवन्मुक्त महापुरुष जिसका पूर्ण प्रेमसे अतृप्त रहकर गान किया करते हैं, मुमुक्षुजनोंके लिये जो भवरोगका रामबाण औषध है तथा विषयी लोगोंके लिये भी उनके कान और मनको परम आह्लाद देनेवाला है, भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके ऐसे सुन्दर, सुखद, रसीले, गुणानुवादसे पशुघाती अथवा आत्मघाती मनुष्यके अतिरिक्त और कौन ऐसा है जो विमुख हो जाय, उससे प्रीति न करे ?'

मनुष्य तीन प्रकारके होते हैं— एक जीवन्मुक्त,
साधक तथा तीसरे साधारण संसारी (विषयी) व्यक्ति।

जिनके कोई तृष्णा नहीं रही, कामना नहीं रही, जो पूर्ण
हैं, जो 'आत्माराम' हैं, जिनके ग्रन्थि-भेदन हो गया है,
शास्त्र-मर्यादासे ऊपर उठ गये हैं— ऐसे जीवन्
तत्त्वज्ञ महापुरुष भी भगवान्‌की भक्ति करते हैं, भजन कर
और भगवान्‌के गुण सुनते हैं—

'जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान।'

(मानस, उत्तर० ४२

'जो निरन्तर भगवान्‌का ध्यान करते हैं, वे भी ध्यान छोड़
भगवान्‌के चरित्र सुनते हैं।'

ब्रह्माजीके चार मानस पुत्र सनकादि हैं। उनकी अवस्था
ही पाँच वर्षकी रहती है। वे जन्मजात सिद्ध हैं। ऐसे अनादि सि
सनकादिक—जिनके दसों दिशाएँ ही वस्त्र हैं, उनके एक 'व्यस
है—

'आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं।
रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं॥'

(मानस, उत्तर० ३२

जहाँ भी भगवान्‌की कथा हो, वहाँ वे सुनते हैं। दूसरा व
कथा करनेवाला न हो तो— तीन बन जाते हैं श्रोता और
बन जाते हैं वक्ता। इस प्रकार मुक्त-पुरुष भी भगवान्‌की क
सुनते हैं। परमात्म-तत्त्वमें निरन्तर लीन रहनेवाले जीवन्मुक्त पु
भी सत्संग जहाँ होता है, वहाँ सुनते हैं।

जो संसारसे उद्धार चाहते हैं—ऐसे साधक भी सत्संग सु
हैं, ताकि सांसारिक मोह दूर हो जाय, अन्तःकरण शुद्ध हो जा

क्योंकि 'भवौषधात्'—अर्थात् यह संसारकी दवा है।

जो साधारण संसारी मनुष्य हैं, साधन भी नहीं करते—उनके भी मनको, कानोंको, सत्संगकी बातें अच्छी लगती हैं—''**श्रोत्रमनोऽभिरामात्**', सत्संगसे एक प्रकारकी शान्ति मिलती है, स्वाभाविक मिठास आती है।

इसलिये तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्णन किया—

(१) **निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्** (सिद्ध)

(२) **भवौषधात्** (साधक)

(३) **श्रोत्रमनोऽभिरामात्** (विषयी)

भगवान्‌के गुणानुवादसे उपराम कौन होते हैं? जो नहीं सुनना चाहते। वे 'पशुघ्न' होते हैं अर्थात् महान् घातक (कसाई) होते हैं। 'क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत' कौन भगवान्‌के गुणानुवाद सुने बिना रह सकता है? 'विना पशुघ्नात्' पशुघातीके सिवाय।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ॥

(मानस, सुन्दर० ४४।२)

महान् पापी अथवा ज्ञानका दुश्मन—इनके सिवाय हरिकथासे विरक्त कौन होगा?

जहाँ भगवान्‌की कथा होती है, वहाँ भगवान्, भगवान्‌के भक्त, सन्त-महात्मा, नारद-सनकादि ऋषि-मुनि तथा जीवन्मुक्त—महापुरुष भी खिंचे चले आते हैं; क्योंकि यह अत्यन्त विलक्षण है।

भगवान्‌की सवारी हैं गरुड़। उन गरुड़जीके बारेमें कहा गया है—'गरुड़ महाग्यानी गुनरासी।' गरुड़जी जब उड़ते हैं तो उनके पंखोंसे सामवेदकी ऋचाएँ निकलती हैं। 'हरिसेवक अतिनिकट

निवासी'। ऐसे गरुड़जी, जो सदा ही भगवान्‌के पास रहते
उनको मोह हो गया, जब भगवान् श्रीरामको नागपाशमें
देखा। भगवान्‌का यह चरित्र देखा तो उनके मनमें सन्देह हो ग
कि ये काहेके भगवान्, जिनको मैंने नागपाशसे छुड़ाया। मैं न
छुड़ाता तो इनकी क्या दशा होती ?

इसी प्रकार भगवान् श्रीरामको, हा सीते! हा सीते ! पुका
हुए जंगलमें भटकते देखकर सतीको सन्देह हो गया था कि
कैसे भगवान् जो अपनी स्त्रीको ढूँढ़ते फिर रहे हैं और उस
वियोगमें रुदन कर रहे हैं।

गरुड़जी और सतीके उदाहरण इसलिये दिये कि इन्हें स
श्रीरामजीके चरित्र देखनेसे मोह पैदा हो गया और चरित्र-श्रवण
मोह दूर हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि भगवान्‌के चरित्र देखने
भी भगवान्‌के चरित्र सुनना बढ़िया है। साक्षात् दर्शनसे भी च
सुनना उत्तम है; क्योंकि दर्शनोंसे तो मोह पैदा हुआ है और क
सुननेसे दूर हुआ।

भगवान्‌की कथा गरुड़, सती आदिके मोहको दूर करती
इसका तात्पर्य है कि जिनको मोह हो गया, वे भी सत्संग
अधिकारी हैं तो जिनको मोह नहीं है, वे तत्त्वज्ञ पुरुष
अधिकारी हैं तथा घोर संसारी आदमी सुनना चाहें तो वे
अधिकारी हैं। कोई ज्ञानका दुश्मन ही हो तो उसकी बात अल
है। हरि-कथामें रुचि नहीं होती तो भाई ! अन्तःकरण बहुत मै
है। मामूली मैला नहीं है। मामूली मैला होगा तो स्वच्छ
जायगा, परन्तु ज्यादा मैला होनेसे सत्संग अच्छा नहीं
सकता।

सत्संगति सब मैलोंको दूर करती है; परन्तु सत्संग क

रहनेसे। यदि मनुष्य सत्संगति करे ही नहीं तो मैल दूर कैसे हो? पित्तका बुखार होनेसे मिश्री कड़वी लगती है, कैसे करें? तो कड़वी लगनेपर भी खाते रहो। मिश्रीमें खुदमें ताकत है कि वह पित्तको शान्त कर देगी और मीठी लगने लग जायगी। ऐसे ही सत्संग-भजनमें रुचि न हो तो भी सत्संग-भजन करते रहनेसे ज्यों-ज्यों पाप नष्ट होने लगेंगे, त्यों-त्यों सत्संगमें मिठास आने लगेगा।

जिस मिठाईको हम चखे ही नहीं, उसका स्वाद हम कैसे जान सकते हैं। ऐसे ही जिन्होंने सत्संग किया ही नहीं, वे इसकी विशेषता नहीं जानते, फिर भी कह देते हैं कि हमने बहुत सत्संग सुना है। तो समझ लेना चाहिये कि उन्होंने विशेष सत्संग किया ही नहीं, अन्यथा सत्संगमें रुचि अवश्य बढ़ती—

राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन्ह नाहीं॥

(मानस, उत्तर० ५३। १)

जो मनुष्य भगवान्‌के चरित्र सुनते हैं और तृप्त हो जाते हैं, उन्होंने राम-कथाका विशेष रस जाना ही नहीं। अन्यथा—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। .... ॥

(मानस, अयोध्या० १२८। २-३)

आपकी कथाएँ नदियोंके समान और उन सत्संग-प्रेमियोंके कान ऐसे समुद्रके समान हैं; जो निरन्तर कथा-रूपी नदियोंके गिरने-(मिलने) पर भी कभी पूरे भरते नहीं हैं। उनके तो कथा सुननेकी तृष्णा अधिक-अधिक बढ़ती है। राजा पृथुने भगवान्‌की कथा सुननेके लिये दस हजार कान माँगे।

पागल व्यक्ति जैसे सँभालकर नहीं बोल सकता— ऐसे ही

संसारी पुरुष सत्संगके बारेमें उलटी-सीधी बातें कहते हैं-

बातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे

(मानस, बाल० १

ऐसे लोगोंके पैरोंमें पड़ जाओ। उनसे कहो— पवित्र हो, बड़ी अच्छी बात है। आप सत्संगमें पधारो। सत्संगमें आनेवाले लोगोंको भी पवित्र करो।' ऐसे क उन्हें सत्संगमें बुलाओ। नहीं आवें तो उनकी मरजी। गा तो सह लो। जो गाली सुनाता है वह तो हमारे पापोंक करता है।

सत्संगकी महिमा कहाँतक कही जाय ? स्वयं भगवान् श्रीरामजीसे सत्संग माँगते हैं।

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

(मानस, उत्तर० १

भगवान् शंकरको कौन-सा पाप दूर करना था ? कौ साधना सीखनी थी ? जो वे सदा सत्संग ही चाहते हैं। भग शंकरको कोई राम-कथा सुनानेवाले मिलते हैं, तो सुनते हैं पार्वतीजी-जैसे सुननेवाले मिलते हैं तो सुनाते हैं।

'मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥'

(गीता १

'मेरेमें चित्तवाले, मेरेमें प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्त आपसमें मेरे गुण, प्रभाव आदिको जनाते हुए और उनका क करते हुए ही नित्य-निरन्तर सन्तुष्ट रहते हैं और मेरेमें करते हैं।'

एक भक्त हो गये हैं—जयदेव कवि। 'गीत-गोविन्द' उनका बनाया हुआ बहुत सुन्दर संस्कृत-ग्रन्थ है। भगवान् जगन्नाथ स्वयं उनके 'गीत-गोविन्द'को सुनते थे। भक्तोंकी बात भगवान् ध्यान देकर सुनते हैं। एक मालिन थी, उसको 'गीत-गोविन्द'का एक पद (धर) याद हो गया। वह बैगन तोड़ती जाती और पद गाती जाती थी। तो ठाकुरजी उसके पीछे-पीछे चलते और पद सुनते। पुजारीजी मन्दिरमें देखते हैं कि ठाकुरजीका वस्त्र फटा हुआ है। उन्होंने पूछा—'प्रभो ! आपके यहाँ मन्दिरमें रहते हुए, यह वस्त्र कैसे फट गया, ठाकुरजी बोले—'भाई ! बैगनके काँटोंमें उलझकर फट गया।' पुजारीने पूछा—'बैगनके खेतमें आप क्यों गये थे ?' ठाकुरजीने बता दिया; मालिन 'गीत-गोविन्दका' धर गा रही थी, अतः सुनने चला गया। वह चलती तो मैं भी पीछे-पीछे डोलता था, जिससे कपड़ा फट गया। ऐसे स्वयं भगवान् भी सुनते हैं। क्या भगवान्‌के कोई रोग है, व्याधि है, पाप है जिसे दूर करनेके लिये वे सुनते हैं ? फिर भी वे सुनते हैं। भगवान्‌की कथा सुननेके अधिकारी भक्त हैं, ऐसे ही भक्तकी कथा सुननेके अधिकारी— भगवान् होते हैं।

जहाँ भक्तोंकी चर्चा होती है, वहाँ भगवान् स्वयं पधारते हैं। नाभाजी महाराजने 'भक्तमाल'-की रचना की। उसके ऊपर प्रिया-दासजी महाराजने कवित्तामें टीका की। ये स्वयं ठाकुरजीका सिंहासन लगाकर, उन्हें कथा सुनाते थे। उनकी कथामें अनेक धनिक लोग भी आते थे। धनिकोंके आनेसे खतरा होता है। कुछ चोरोंने देखा कि यहाँ इतने धनी आदमी आते है, हम भी चलें। और कुछ नहीं मिला तो चोरोंने ठाकुरजीकी प्रतिमा चोरी कर ली। प्रियादासजी महाराजने कहा—'हमारे मुख्य श्रोता चले गये, अब

कथा किसे सुनावें ? कथा बन्द। ठाकुरजी चले गये। भोग किसे लगावें ? भोजन बनाना बन्द ! भूखे रहे। कथ बन्द रही। उधर चोरोंके बड़ी खलबली मची। वे लाकर ठाकुरजीको दे देते हैं। जब ठाकुरजी आ गये स्नान किया, ठाकुरजीको स्नान, शृंगार कराया। बनायी, भोग लगाया। उसके बाद कथा चली। जब कथा तो प्रसंग कहाँतक चला— ऐसा किसीको याद नहीं रहा, ठाकुरजी स्वयं बोल पड़े कि अमुक प्रसंगतक कथा थी। इस प्रकार स्वयं श्रीभगवान् भक्तोंकी कथा ध्यानपू सुनते हैं।

सूर्योदय होता है तो अन्धकार दूर हो जाता है, किन्तु बाहरी अन्धकार होता है; किन्तु जब सत्संग-रूपी सूर्य उदय हो है तो उससे भीतर (अन्तःकरण) में रहनेवाला अँधेरा दूर हो जा है। पाप दूर हो जाते हैं। शंकाएँ दूर हो जाती हैं। अन्तःकरण रहनेवाली तरह-तरहकी उलझनें सुलझ जाती हैं—

राम मया सतगुरु दया, साधु संग जब होय।
तब प्राणी जाने कछु, रह्यो विषय रस भोय॥

भगवान् और सन्तोंकी जब पूर्ण कृपा होती है तब सत्संग मिलती है—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

(मानस, उत्तर० ६९। ४

विभीषणने हनुमान्‌जीसे कहा—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता

(मानस, सुन्दर० ७। २

'हे हनुमान्‌जी ! अब मुझे पक्का भरोसा हो गया कि भगवा

जरूर मिलेंगे। आप मिल गये, इससे मालूम होता है कि श्रीभगवान्‌ने मुझपर विशेष कृपा की है।' भगवान् विशेष कृपा करते हैं तभी अपने प्यारे भक्तोंका संग देते हैं।

सत्संगसे बहुत शान्ति मिलती है। मुझे कई भाई-बहिन मिले हैं। उनका बहुत समाधान हुआ है; शान्ति मिली है। सत्संगमें सबके लिये उपयोगी बातें मिलती हैं। तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, साधक, संसारी, विषयी—समस्त आदमी इसके सुननेके पात्र हैं। जब भी, सत्संग सुननेको मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान्‌ने विशेष कृपा की है। भगवान्‌ने मनुष्य-शरीर दिया, यह कृपा की, उसके बाद सत्संग दिया— यह विशेष कृपा है। ऐसी कृपाका लाभ हमें तो लेना ही चाहिये। दूसरोंको भी,जो लेना चाहें तो देना चाहिये—

भरा सत्संग का दरिया, नहा लो जिसका जी चाहे,
हजारों रतन बेकीमत भरे आला से आला हैं,
लगाकर ज्ञान का गोता, निकालो जिसका जी चाहे।

सत्संग-रूपी दरियामें बहुत बढ़िया-बढ़िया रत्न हैं। इसमें ज्ञानकी डुबकी जितनी लगायेंगे, उतनी ही विलक्षण बातें मिलेंगी। सुननेसे तो मिलती ही हैं, सुनानेसे भी मिलती हैं। सुनानेमें भी ऐसी-ऐसी विलक्षण बातें पैदा होती हैं कि बड़ा भारी लाभ होता है। ऐसी कई बातें हमें सुननेवालोंकी कृपासे मिलती हैं।

संत समागम हरि-कथा, तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी के भी होय॥

भगवान्‌की कथा और सत्संग—ये दो दुर्लभ वस्तुएँ हैं। पुत्र-स्त्री और धन तो पापी मनुष्यके भी प्रारब्धानुसार होते ही हैं।

रावणका भी बहुत बड़ा राज्य था— यह कोई बड़ी बात न
बड़ी बात तो यही है कि भगवान्‌का चिन्तन हो, स्मरण हो, च
हो तथा भगवान्‌की तरफ लग जायँ। सन्तोंने भी माँगा है—

राम जी साधु संगत मोहि दीजिये।
वाँरी संगत दो राम जी पलभर भूल न होय॥

'महाराज! सत्संगति दीजिये, जिससे आपको क्षणभर
नहीं भूलूँ।'

सज्जनो! सत्संगसे जो लाभ होता है, वह साधनसे
होता। साधन करके जो परमात्म-तत्त्वको प्राप्त करना है,
कमाकर धनी होनेके समान है। किन्तु सत्संग सुनना तो गो
जाना है। गोद चले जानेसे कमाया हुआ धन स्वतः मिल ज
है। सन्तोंने कितने वर्ष लगाये होंगे? कितना साधन कि
होगा? कितनोंका संग किया होगा? उस सबका सार आप
एक घण्टेमें मिल जाता है। गोद जानेमें क्या जोर आवे साहब
आज कँगला और कल लखपति! वह तो कमाये हुए धन
मालिक बन जाता है। सत्संगके द्वारा ऐसी-ऐसी चीजें मिलती
जो बरसोंतक साधन करनेसे भी नहीं मिलतीं। इसलिये भाई
सत्संग मिल जावे तो जरूर करना चाहिये। इससे मुफ्तमें कल्य
होता है, मुफ्तमें। कहा गया है—

जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

(मानस, बाल० ३। २-

और—

संत समागम करिये भाई, लोह पलट कंचन हो जाई।

नानाविध बनराय कहीजे, भिन्न-भिन्न सब नाम धराई ॥
नौका रूप जानि सत्संगहि, या में सब मिल बैठो आई ।
और उपाय नहीं तिरने का, सुन्दर काढिहि राम दुहाई ॥

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

——::卐::——

॥ श्रीहरिः ॥

सन्त-महिमा

२

शास्त्रोंमें **सन्तोंकी** बहुत महिमा मिलती है। स्वयं श्रीभगवा भी अपने भक्तोंकी महिमा गायी है। **सन्त** या भक्त कि वेशभूषाका नाम नहीं है, प्रत्युत भीतरके भावका नाम है। प्रकारका भाव रखनेवाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्य माता-बहिन कोई भी हो सकते हैं।

सन्त कहते ही हमारी दृष्टि साधु-आश्रमपर जाती है; क्यो साधु-आश्रममें बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ, सन्त, महापुरुष एवं ज्ञानी हुए भगवत्प्रेमी हुए हैं। परन्तु गृहस्थोंमें भी कम नहीं हुए हैं। बहन भी मीराबाई आदि बड़ी-बड़ी सन्त हुई हैं, जिनके स्मरणमा अन्तःकरण शुद्ध होता है। गृहस्थोंमें भी बड़े-बड़े और वि भक्त हुए हैं। इतना ही नहीं, साधारण-से-साधारण,पापी-से-पा दुराचारी-से-दुराचारी तथा मूर्ख-से-मूर्ख व्यक्ति भी उस तत्त्व जानकर सन्त-महात्मा बन सकता है।

संसारमें कोई भी दो व्यक्ति धन, सम्पत्ति, वैभव आ समान नहीं हो सकते; किन्तु परमात्मतत्त्व-प्राप्तिमें सब समान ह हैं। जो तत्त्व वसिष्ठ, नारद एवं सनकादिको प्राप्त हुआ है, वही अ भी प्राप्त होता है; क्योंकि वह सत्य तत्त्व एक है। वहाँ पहुँचनेपर स एक हो जाते हैं। हाँ, साधनमें फर्क हो सकता है—

पहुँचे-पहुँचे एक मत, अण पहुँचे मत और।
सन्तदास घड़ी अरठकी, ढुरे एक ही ठौर॥

अरठमें बँधे घड़े या पीपे कुएँमेंसे जल लेकर चलते हैं तो उनकी ऊँची-नीची विभिन्न स्थितियाँ होती हैं; किन्तु सबका जल एक ही जगह गिरता है। इसी प्रकार जितने भी साधन-भेद होते हैं, वे सब अनपहुँचे व्यक्तियोंके होते हैं। पहुँचे हुए महात्माओंकी वास्तविक स्थितिमें फर्क नहीं होता, साधनाओंकी भिन्नताके कारण मार्गोंकी भिन्नता वहाँ भी रहती है; किन्तु लक्ष्यतक पहुँचनेपर सब एक ही तत्त्वको प्राप्त हो जाते हैं।

गीतामें दो निष्ठाएँ बतायी हैं—ज्ञानयोग और कर्मयोग—

'ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम्॥

(३।३)

श्रीमद्भागवतमें मनुष्यके कल्याणके लिये—

'योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयो विधित्सया।'

ज्ञानयोग, भक्तियोग और कर्मयोग—ये तीन योग बताये गये हैं। ऐसे ही द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अद्वैताद्वैत, अचिन्त्यभेदाभेद आदि अनेक अवान्तर मार्ग शास्त्रोंमें बतलाये गये हैं। ये अनेक भेद साधनकी दृष्टिसे हैं। पर साध्य-तत्त्वकी प्राप्ति होनेपर ये भेद नहीं रहते। जो साध्य-तत्त्वतक पहुँच जायँ और मार्गोंकी दृष्टिसे भी ठीक-ठीक विवेचन कर दें, ऐसे सन्त बहुत ही कम मिलते हैं। अब हैं या नहीं, यह पता नहीं; भगवान् ही जानें। खोज करने और ढूँढ़नेपर भी, ऐसे महात्मा बहुत कम देखनेमें आये हैं। जो वास्तवमें पहुँचे हुए हैं और किसी सम्प्रदाय अथवा मतका कोई आग्रह भी नहीं रखते। सब कुछ जाने हुए, समझे हुए, सुलझे हुए सन्त बहुत ही कम देखनेमें आये हैं।

हम इतिहास, भागवत आदि ग्रन्थोंको देखते हैं तो उनमें सन्तों, राजर्षियों, बड़े-बड़े त्यागियों, तपस्वियों तथा प्रेमियोंका वर्णन मिलता है। उनमें भी ठीक-ठीक तत्त्वतक पहुँचनेवाले बहुत ही कम मिलते हैं; फिर आजकलकी तो बात ही क्या है। लोग भजन-ध्यान आदिको फालतू समझने लगे हैं। जो वास्तवमें मनुष्य-जीवनकी सफलता है, उस तत्त्व-प्राप्तिको समझते नहीं, इतना ही नहीं, समझना चाहते भी नहीं। इसकी उपेक्षा करते हैं। पशुओंकी भाँति ही अपना समय व्यर्थ गवाँ रहे हैं—

'कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।'' (गीता १६।११)

'नान्यदस्तीति वादिनः।' (गीता २।४२)

काम और भोगके सिवाय कुछ है ही नहीं। खाना, कमाना और भोगना—बस, इतना ही सब कुछ है। उनके मतमें और कुछ है ही नहीं। वे इसीमें उलझे रहते हैं। अब उनसे क्या कहा जाय? सज्जनो! वे तो पशुओंसे भी नीचे हैं। उनको पशुओंके समकक्ष रखा जाय तो पशु नाराज हो सकते हैं कि हमारी बेइज्जती क्यों करते हैं? हम तो अपने कर्मोंका फल भोगकर मनुष्य-जन्मकी ओर जा रहे हैं। परन्तु पाप करनेवाले मनुष्य तो नरकों एवं नीच योनियोंकी ओर अग्रसर हो रहे हैं। यह कितना बड़ा अन्तर है! इसीलिये कहा गया है—

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥

(मानस, सुन्दर० ४६।४)

नरकोंका निवास अच्छा है, पर विधाता दुष्टोंका संग न दें, क्योंकि नरक भोगनेसे तो पाप नष्ट होते हैं, जब कि दुष्टोंके संगसे पाप पैदा होते हैं और आगे नरकोंकी तैयारी होती है।

सज्जनो! थोड़ा ध्यान दें। सन्तोंको पहचाननेमें वे ही समर्थ

हैं, जो सच्चे हृदयसे इस मार्गपर चलते हैं। केवल अन्धानुकरण ही नहीं करते; प्रत्युत विवेकपूर्वक खूब गहरे उतरकर इन पारमार्थिक विषयोंको अच्छी प्रकार समझते भी हैं। इससे भी आगे समझी हुई बातोंको आचरणमें लाते हैं। वे सन्तोंको कुछ-कुछ समझ पाते हैं। वे भी इतना ही समझ पाते हैं कि ये सन्त हमसे श्रेष्ठ हैं। परन्तु ये कहाँतक पहुँच चुके हैं— यह समझनेकी शक्ति किसीमें भी नहीं है। इस बातको या तो वे स्वयं समझते हैं या उनसे भी बढ़कर समझते हैं उनके भगवान्।

जैसे सूर्य प्रकाशित होता है तो दिन निकल आता है, ऐसे ही सन्तोंका संग करनेसे हृदयमें प्रकाश होता है। मनुष्यको दीखने लगता है कि मुझमें कहाँ-कहाँ कमी है और इसे कैसे दूर किया जाय? उपाय सूझने लगते हैं। सन्तोंके संसर्गमात्रसे ही, बिना कहे-सुने, बिना पूछे भी स्वतः ही अन्तःकरणमें विलक्षण भाव पैदा होते हैं। एक प्रकारका विलक्षण प्रकाश मिलता है। इसलिये जिसको सन्तोंका संग मिल गया हो, उसको अपने ऊपर भगवान्‌की विशेष कृपा समझनी चाहिये—

जब द्रवै दीनदयाल राघव, साधु संगति पाइये।

सन्त भगवान्‌का हृदय हैं। जिस प्रकार बूढ़े माँ-बाप अपनी छिपी हुई पूँजी, अपनी विशेष कृपा-पात्र सन्तानको ही बताते हैं, देते हैं, उसी प्रकार भगवान् अपने प्यारे सन्त जो कि उनका हृदय-धन हैं— उनके सामने खोलकर रख देते हैं, जिनपर विशेष कृपा करते हैं। जैसे सन्तोंके धन भगवान् हैं, ऐसे ही भगवान्‌के धन सन्त हैं। वे जब कृपा करते हैं तो हमें सन्तोंसे मिला देते हैं तथा कहते हैं कि भाई! अब तुम सत्संग करो और लाभ ले लो।

अब प्रश्न उठता है कि हम तो सन्तोंको पहचान सकते नहीं,

क्या करें ? तो आप भगवान्‌से सच्चे हृदयसे प्रार्थना करें कि नाथ ! हमें आपके जो प्यारे भक्त हैं, सन्त-पुरुष हैं—उन दर्शन कराइये। ऐसे आप भगवान्‌से कहें अथवा आपके हृदय उत्कण्ठा हो जाय तो आपको कोई-न-कोई सन्त अवश्य ही मि जायँगे।

जैसे, फल चलकर तोतेके पास नहीं जाता, वरन् तोता स्व फलके पास आकर उसे चोंच लगाता है। इसी प्रकार स जिज्ञासुओंको सन्त-महात्मा ढूँढ़ते-फिरते हैं। यद्यपि माँसे अधि आवश्यकता बालकको होती है; किन्तु माँके मनमें बालकक जितनी गरज होती है, उतनी बालकके मनमें माँके लिये न होती। जब दूधकी आवश्यकता होती है, तभी वह माँको या करता है; किन्तु माँ सब समय उसकी याद करती है। बच्चेको भू लगनेपर माँके स्तनोंसे दूध टपकने लगता है, उसी प्रकार स जिज्ञासुके प्रति सन्तोंका ज्ञान-अमृत टपकने लगता है। अपने-आपको रोक नहीं सकते; बस, कोई मिल जाय लेनेवाला

किन्तु संसारके लोग इन बातोंको क्या जानें ? रात-दि हाय रुपया ! हाय रुपया !! भोग-संग्रह, सुख-आराम, क्लब नाटक-सिनेमा, तड़क-भड़कमें लिप्त मनुष्य क्या समझें इ तत्त्वको। इसीलिये सन्त उनसे छिपे रहते हैं—

हरि हीरां री गाँठड़ी, गाहक बिन मत खोल।
आसी हीरां रो पारखी, जब बिकसी महँगे मोल॥

सच्चे जिज्ञासु, साधक ही इन ज्ञान-रूपी हीरोंका मोल सम सकते हैं। इसलिये सन्त-महापुरुष अपनी ज्ञान-गठरी उनके साम ही खोलते हैं।

आज बड़ी उम्रके सभ्य लोग भी खेल-तमाशोंमें इकट्ठे हो

हैं। सिनेमा, क्लब आदिमें जाते हैं। कभी यह बच्चोंकी बात थी। बड़ी अवस्थाके लोग घरका, समाजका काम करते थे,पारमार्थिक बातोंको सोचते थे, किन्तु आज बड़े-बूढ़े हो जानेपर भी खेल-तमाशोंमें ही लगे रहते हैं। बचपन आ गया बड़े-बूढ़ोंमें भी। अब किसको कहें और कौन सुने नीति-धर्मकी बात ?

आदि अविद्या अटपटी, घट-घट बीच अड़ी।
कहो किसे समझाइये, कूए भाँग पड़ी॥

जब कूएँके जलमें ही भाँग घुल गयी, तब सभीको नशा आ गया। अब कौन समझे ? हमें चेत करना चाहिये।

सन्त-महात्माओंने जिस तत्त्वको बड़ी मेहनत करके, त्याग-तपस्यासे प्राप्त किया है, उसको वे बड़े खुले हृदयसे देनेके लिये तैयार बैठे हैं। कोई लेता है, तो खुश होते हैं, प्रसन्न होते हैं। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार दूकानदारका जितना अधिक माल बिकता है, वह उतना ही अधिक खुश होता है। दूकानदारको तो स्वयंको लाभ होता है, पर सन्त-महात्मा संसारका कल्याण होनेसे प्रसन्न होते हैं—

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माहीं। सपनेहुँ प्रभु परमारथ नाहीं॥

(मानस, उत्तर० ४७। ५,६)

बिना कोई स्वार्थ-हित करनेवाले संसारमें दो ही हैं— आप (श्रीभगवान्) और आपके सेवक (सन्त-महात्मा)। भगवान् और भगवान्‌के प्यारे भक्त बिना ही कारण हित करते रहते हैं। जैसे, लोभीकी धनमें और भोगीकी भोगमें प्रीति होती है। उससे भी विलक्षण प्रीति उनको प्राणिमात्रके हितमें होती है।

मेरा भक्तोंकी संगतिमें रहनेका काम पड़ा है। मेरे मनमें बात

आयी कि इतने ऊँचे महापुरुषोंका संग मुझे मिला है, किन्तु मैं ऐ
सन्तोंके संगका पात्र नहीं हूँ। मैंने एक पहुँचे हुए सन्तसे प्र
किया—महाराज! भगवान्‌के घरमें अँधेरा है, उनके यह
सावधानी नहीं है, तभी तो हम-जैसे लोगोंको ऐसे-ऐसे ऊँचे दर्जे
सन्त-महात्माओंके दर्शन हुए। हम तो इसके पात्र नहीं। क्योंकि
उत्तम वस्तु तो योग्य पात्रको ही मिलनी चाहिये। परन्तु हमारे-जै
पात्रको भी ऐसी ऊँचे दर्जेकी बातें मिलती हैं— तो यह क्या है?

अंधाधुंध सरकार है तुलसी भजो निसंक।
खीझे दीन्हो अमरपद, रीझे दीन्ही लंक॥

यह कोई हिसाब है? गुस्सा आनेपर रावणको परम पद दिया और प्रसन्न होनेपर विभीषणको राजगद्दी दी। ऐसा पूछनेप मुझे जवाब मिला कि—'बात ठीक है। कन्याके लिये योग्य व ही ढूँढ़ना चाहिये। किन्तु कन्या बड़ी हो जाय और योग्य वर मिले, तो जैसा वर मिले, उसके साथ ही ब्याहना पड़ता है।' त ऐसे तो हमलोग और हमें मिलें ऐसी मार्मिक बातें!

लोग कहते हैं कि अच्छे पुरुष मिलते नहीं और मैं कहता कि हम अच्छे पुरुषोंके लायक नहीं हैं। आपलोगोंसे मैं एक बा पूछता हूँ—'क्या आपको अभीतक अपनेसे ऊँचे दर्जेका पुरु मिला ही नहीं? यदि मिला है तो क्या आपने उनसे पूरा लाभ ले लिया? यदि नहीं लिया, तो उनसे बड़े पुरुष, सन्त मिलनेपर आ उनसे लाभ कैसे ले लेंगे? क्या निहाल हो जायँगे उनसे मिलकर अभी जो मिलते हैं, उनसे पूरा लाभ ले लो— इस कक्षामें त उत्तीर्ण हो जाओ। उसके बाद भगवान् अपने-आप अगली कक्षा भेज देंगे। बालक जिस श्रेणीमें पढ़ता है, उससे आगेकी श्रेणिय पहलेसे तैयार रहती हैं। भगवान् तो प्रधानाध्यापक हैं—

आपके पास होते ही, वे आगेकी कक्षामें भेज देंगे। उससे ऊँचे सन्तोंका संग करा देंगे।

अब प्रश्न होता है कि उन सन्तोंको हम पहचानेंगे कैसे? आजसे कोई ३५-४० वर्ष पहलेकी बात है। ऋषिकेशमें एक सज्जनने मुझसे पूछा कि आप तो यहाँ वर्षोंसे आते रहते हैं, हमें कोई अच्छे सन्त बताइये। अच्छे महात्माके दर्शन कराइये। आप बताओ, कौनसे अच्छे महात्मा हैं? मैंने कहा भाई! आपका प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया, क्या उत्तर दूँ? तो वे मुझे समझाने लगे कि मैं किसी अच्छे सन्त-महात्माका पता पूछता हूँ, जिसका संग करके हम लाभ उठावें। मैंने फिर कहा कि भाई! आपका प्रश्न मैं समझा नहीं। वे फिर मुझे समझाने लगे तो मैंने कहा कि आपके प्रश्नके अक्षर तो मेरे समझमें आ गये। आप जो बात कहते हैं, वह भी सीधी-सादी है, किसी विदेशी भाषामें नहीं है, परन्तु मेरी अकलमें आपकी बात नहीं बैठी। वे बोले—कैसे? तो मुझे कहना पड़ा कि—जब आपकी समझमें मेरा इतना सम्मान है कि मैं सच्चे सन्त-महात्माओंका पारखी हूँ तो उन महात्माओंकी परीक्षा करनेवाला मैं उनसे तो ऊँचा ही हो गया—फिर आप दूसरा क्यों खोजते हैं? जब मैं उन सन्तोंकी परीक्षा करनेवाला हूँ, तो उनसे मेरेमें कम योग्यता होगी? इस तरह आपका प्रश्न मेरी समझमें नहीं आया।

एक सज्जन मुझे मिले और बोले—'हमें बहुत-से महात्मा मिले।' तो मैंने कहा कि आपको एक भी नहीं मिले। अगर एक भी मिलते, तो बहुत नहीं मिलते। वास्तवमें एक भी सन्त मिलते तो आप वहीं अटक जाते। आप भटकते हैं तो आपको एक भी

नहीं मिले। अगर मिल जाते, तो दूसरी जगह जाते कभी किसलिये जाते बताओ ? उन महात्मामें कमी देखी है तभ तो दूसरेके पास जाते हैं। वहाँ आपकी पूर्ति नहीं होती इसलिये दूसरी जगह भटकते हैं, दूसरोंकी गरज करते हैं। किसी कहा है—

हरि दुर्लभ नहीं जगत में, हरिजन दुर्लभ होय।
हरि हेर्‌याँ सब जग मिले, हरिजन कहीं एक होय ॥

सन्त-महात्मा और उनको पहचाननेवाले बहुत ही दुर्लभ हैं आज तो दम्भ, पाखण्ड और बनावटीपन इतना हो गया कि असली सन्त-महात्माको पहचानना अत्यन्त ही कठिन कार्य ह गया है। पर सच्चे जिज्ञासुको पता लगता है। भगवान् कृपा कर हैं, तभी उनको पहचाना जा सकता है। अब उनकी पहचान क्य हो ? भाई ! हम उनकी पहचान नहीं करते, हम तो अपनी पहचा कर सकते हैं।

हमने एक कहानी सुनी है। एक नवयुवक राजगद्दीपर बैठा पाँच-सात वर्ष राज्य करनेके बाद उसने अपने राज्यवे बड़े-बूढ़ोंको इकट्ठा करके पूछा—'आपलोग बतावें कि राज हमारा ठीक रहा या हमारे पिताजीका ठीक था ? अथवा हमा दादाजीका ठीक था ? किसका राज्य ठीक रहा ? आपने हमार तीनों पीढ़ियोंका राज्य देखा है। बेचारे सब चुप रहे। एक बहु बूढ़ा आदमी खड़ा होकर कहने लगा कि 'महाराज ! हम आपक प्रजा हैं। आप उमरमें छोटे हैं तो क्या हुआ, आप हमारे मालिक हैं। अब हम आपके बारेमें निर्णय कैसे करें कि आपमें कौन योग्य और कौन अयोग्य है ? कौन बढ़िया और कौन घटिया है ? य हमारी क्षमता नहीं है। मेरी बात पूछें तो मैं अपनी बात तो क

सकता हूँ, पर आपकी परीक्षा नहीं कर सकता।' राजाने कहा—'अच्छा ! अपनी बात बताओ।'

वह कहने लगा—'जब आपके दादाजीका राज्य था, उस समय मैं जवान था। मैं पढ़ा-लिखा था। शरीरमें बल भी अच्छा था। मैं एक लाठी पासमें रखता था। उस समय यदि ५-१० आदमी एक साथ भी सामना करनेके लिये आ जाते तो मैं हार नहीं खाता, बल्कि उन सबको मार दूँ— ऐसा मेरा विश्वास था। एक दिन मैं किसी गाँव जा रहा था। रास्ते चलते मेरे कानमें किसी स्त्रीके रोनेकी आवाज आयी। तो मैंने सोचा चल कर देखें, क्या बात है? मैं आवाजकी दिशामें गया, तो देखा कि एक सुन्दर युवती अकेली जंगलमें बैठी रो रही है। उसने बहुत कीमती गहने, कपड़े पहन रखे थे। मैं अचानक उसके पास पहुँचा तो वह डर गयी और एकदम चुप हो गयी। मैंने बड़े प्यारसे कहा कि बहिन ! घबराओ मत। बताओ कि तुम क्यों रो रही हो? मेरे ऐसा कहने-पर वह आश्वस्त हुई और बोली—मैं पीहरसे ससुराल जा रही थी। साथमें २-४ बैलगाड़ियाँ और ऊँट थे। रास्तेमें डाकू मिल गये, तो उनसे मुठभेड़ हो गयी। मेरे सम्बन्धी और डाकू आपसमें लड़ने लगे। मुझे डर लगा तो भागकर जंगलमें चली आयी और यहाँ आकर बैठ गयी। अब उनका क्या हाल हुआ, यह तो भगवान् जानें? किन्तु मैं किधर जाऊँ, यह भी मुझे रास्ता मालूम नहीं है। मेरा जन्म-गाँव तो दूर रह गया; लेकिन ससुराल-गाँव पास ही है, ऐसा अन्दाज है। लेकिन मैं जानती नहीं, क्या करूँ? यह सोचकर रोना आ रहा है।' इस तरह कहकर उसने मुझे अपने ससुरालका पता बताया। मैं उस गाँवको जानता था, इसलिये मैंने उससे कहा—बहिन ! तुम चलो, डरनेकी कोई बात नहीं है, मैं

तुम्हारे साथ हूँ। पूछनेपर उसने अपने श्वशुरका नाम कागज लिखकर बताया। मैं उसके श्वशुरको जानता था, इसलिये उ उसके ससुराल ले गया। रात हो चुकी थी, सब लोग तर तरहकी चिन्ता कर रहे थे। वे लोग बहुत दुःखी थे; क्योंकि बहू शरीरपर गहने आदि बहुत थे। बहूको सही-सलामत पहुँ देखकर सबके मनमें प्रसन्नता छा गयी। उस स्त्रीने अप घरवालोंसे कहा—इन सज्जनको मैं पिता कहूँ या भाई कहूँ इन्होंने मुझे बड़े प्यारसे धीरज दिलाया और यहाँतक पहुँचाय उसके श्वशुर मुझे इनाम देनेके लिये पाँच-सात सौ रुपये लाये अ लेनेका आग्रह करने लगे। मैंने अपना कर्त्तव्य समझकर यह क किया था कि कोई दुःखी है तो उसका दुःख दूर हो जाय, इसलि मैंने रुपये नहीं लिये। मैंने मनमें सोचा कि अप कर्त्तव्य-पालनकी बिक्री नहीं करूँगा। मेरे मनमें रुपये न लेने बड़ा सन्तोष रहा। मैं वापस चला आया।

यह बात तो आपके दादाजीके समयकी थी। इसके बा आपके पिताजीका राज्य आया। उनके राज्य-कालके पाँच-सा वर्ष बीतनेपर एक बार मेरे व्यापारमें बड़ा घाटा लगा। धनकी तंग हुई तो मेरे मनमें बात आने लगी कि उस समय इतना अच्छ अवसर मिला था, दस-पन्द्रह हजारका तो गहना ही था। अकेल स्त्री थी, एक थप्पड़ मारता तो सारा गहना, जेवर मिल जाता आज यह दुःख नहीं भोगना पड़ता। उस समय बड़ी भूल ह गयी। अब पछतानेसे क्या हो। जब वे इनाम देने लगे, तब भ नहीं लिया। बड़ाईका भूखा आज तंगी भोगता है। इस प्रकारके भाव मनमें आये थे। महाराज! आप तो अवस्थामें मे पोतेके समान हैं, आपके सामने कहनेमें लज्जा आती है। अब

तो मनमें ऐसे भाव आ रहे हैं कि उस समय उस स्त्रीको समझा-बुझाकर या धमकाकर अपनी स्त्री बना लेता, तो आज वह मेरी सेवा करती और धन भी मिल जाता। परन्तु, अब तो बात हाथसे निकल गयी, पछतानेसे क्या लाभ ? इस तरह, महाराज ! हम तो अपने मनके विचार बता सकते हैं। आप ! राजाओंका निर्णय कौन करे। आपका निर्णय करनेकी ताकत हममें कहाँ !

राजा समझ गया कि बुड्ढा बड़ा बुद्धिमान् है। 'यथा राजा तथा प्रजा।' यह बात भी कह दी और हमें रुष्ट भी नहीं किया। इस तरह सन्तोंकी पहचान हम नहीं कर सकते कि ये कहाँतक पहुँचे हुए हैं, किन्तु उनके पास जानेसे हमारे मनमें मच रही हलचल शान्त होती हो, बिना पूछे शंकाओंका समाधान होता हो, मनमें सन्तोष होता हो, अपनेमें दैवी सम्पदाके गुण आते हों अर्थात् दया, क्षमा, उदारता, त्याग, सन्तोष, नीति, धर्म आदिकी वृद्धि होती हो, दुर्गुण-दुराचार दीखने लगें और घटने लगें। जिन महापुरुषोंके संग अथवा दर्शनोंसे ऐसी विलक्षणताएँ आती हों— तो हम अन्दाज लगा सकते हैं। परन्तु सन्तोंकी पहचान हम क्या कहें ? हमको क्या पता कि वे कैसे हैं ?

इसके अलावा हम गरीब हों अथवा धनी हों— जिनके मनमें हमारी कोई गरज नहीं दीखती। हम धनी हैं तो कुछ ज्यादा आदर करें और गरीब हैं तो निरादर करें, हमसे वे कुछ स्वार्थ सिद्ध करना चाहें— ऐसा हमें कभी लगता ही नहीं, कभी भी। हम उनसे ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग आदिकी बातें पूछते हैं तो वे उनसे भी आगेकी बातें बता देते हैं। हमारी दृष्टिमें सगुण-निर्गुण, साकार-निराकारके तत्त्वको जाननेवाला, उनसे बढ़कर कोई

दीखता नहीं— ऐसे महापुरुषोंका संग मिल जाय तो अपना वि
खोलकर रखनेसे बड़ा लाभ होता है।

सरल सुभाव न मन कुटिलाई।

(मानस, उत्तर० ४६।

ऐसे सन्तोंके पास सरल हृदयसे जायँ। अपनी विद्व
प्रख्यापित करनेके लिये, चतुर कहलानेके लिये प्रश्न न क
अपने हृदयकी गुत्थियाँ सुलझानेके लिये, अपनी उलझन मिटाने
लिये सरलतासे प्रश्न करें— तो विशेष लाभ ले सकेंगे।

साधनके विषयमें जाननेके लिये प्रश्न करें कि क्या साध
करें? यहाँतक तो पहुँच गये, इसके बाद क्या साधन कर
चाहिये—इस प्रकार जानकर आगे बढ़ा जाय तो बहुत लाभ
बात है।

सन्त-महात्माओंको हमारी विशेष गरज रहती है। जै
माँको अपने बच्चेकी याद आती है। बच्चेको भूख लगते ही
स्वयं चलकर बच्चेके पास चली आती है— ऐसे ही सन्त-महात
सच्चे जिज्ञासुओंके पास खिंचे चले आते हैं। इस विषयमें ए
कहानी सुनी है—

एक गृहस्थ बहुत ऊँचे दर्जेके तत्त्वज्ञ, जीवन्मु
महापुरुष थे। वे अपने घोड़ेपर चढ़कर किसी गाँव जा रहे थे
चलते-चलते घोड़ा एक अन्य रास्तेपर चल पड़ा। उन्होंने उसक
कितना ही मोड़ना चाहा, लेकिन वह तो उसी रास्तेपर चलने
लिये अड़ गया। इसपर उन्होंने सोचा कि अच्छी बात है, इस
मनमें जिधर जानेकी है, उधरसे चलना चाहिये। अपने थो
चक्कर पड़ेगा, कोई बात नहीं। वह घोड़ा जाते-जाते ए
घरके सामने रुक गया। समय अधिक हो गया था, अतः वे स

घोड़ेसे नीचे उतर पड़े और उस घरके अन्दर गये। वहाँ एक सज्जन मिले। उन्होंने उन महापुरुषका बड़ा आदर-सत्कार किया, क्योंकि वे उन्हें नामसे जानते थे कि अमुक महापुरुष बड़े अच्छे सन्त हैं। वे सज्जन अच्छे साधक थे। वे कई बार सोचते थे कि सन्त-महात्माके पास जावें और उनसे साधन-सम्बन्धी रास्ता पूछें। आज तो भगवान्‌ने कृपा कर दी, तो घर बैठे गङ्गा आ गयीं। उन्होंने उन गृहस्थ-सन्तको भोजनादि कराया। सत्संग-सम्बन्धी बातें हुईं। जो बातें उन सज्जनने पूछीं, उनका अच्छी प्रकार समाधान उन सन्तने किया। वे सन्त जाते-जाते बोले कि 'भाई ! जब भी कोई शंका हो तो यह मेरा पता है, आ जाना या मुझे समाचार कर देना, मैं आ जाऊँगा।' इसपर उन सज्जनने पूछा—'महाराज ! अभी आपको किसने समाचार भेजा था कि आप पधारिये ?' तो वे सन्त बोले— 'मेरा घोड़ा अड़ गया था, इसलिये मुझे आना पड़ा।' तो उन सज्जनने कहा—'अबकी बार फिर आपका घोड़ा अड़ जाय तब फिर आ जाना।' तात्पर्य यह है कि जब साधककी सच्ची जिज्ञासा होती है तो सन्तोंका घोड़ा अड़ जाता है।

सन्तोंकी बात क्या ! स्वयं श्रीभगवान्‌के कानोंमें भी सच्ची पुकार तुरन्त पहुँच जाती है और वे किसी सन्तके साथ हमारी भेंट करा देते हैं—

सच्चे हृदयकी प्रार्थना जो भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्त-वत्सल कानमें वह पहुँच झट ही जाय है ॥

जैसे टेलीफोन एक्सचेंज हमारी लाइन हमारे इच्छित व्यक्तिसे मिला देता है, उसी प्रकार भगवान् हमारी लाइन सन्तोंसे मिला देते हैं। पर हमारी लगन सच्ची होनी चाहिये।

हमारी सच्ची लगन हो तो भगवान्‌में शक्ति नहीं है कि
हमारी लगनको ठुकरा दें। हैं किसलिये भगवान् ? छोटा बाल
है और माँ उसका पालन न करे, तो माँ है किसलिये ? बालक
लिये ही तो माँ है। इसी प्रकार यदि सन्त-महात्मा साधकोंको
बात नहीं बतायेंगे तो वे जीते क्यों हैं ? उनका क्या उपयोग है
सज्जनो ! जब वे अपना कार्य पूरा कर चुके, तो वे हमारे लि
ही हैं। उनसे पूछकर हम अपना कल्याण कर लें। इसीलिये
सच्ची जिज्ञासा बढ़ानी चाहिये। सन्त-महात्माओंकी परीक्षा करने
जरूरत नहीं है। हम सच्चे हृदयसे परमार्थ-मार्गमें चलेंगे,
हमारा काम हो ही जायगा। इसमें सन्देह नहीं है।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

——::0::——

॥ श्रीहरिः ॥

सन्त-चरण-रजका तात्पर्य

३

श्रीभगवान् और उनके भक्तोंकी महिमा अपार है। इन दोनोंमें ी हमलोगोंके लिये भगवान्की अपेक्षा सन्त-महात्माओंकी हिमा ही विशेष है, क्योंकि वे हमारे प्रत्यक्षरूपसे काम आते हैं। से समुद्र तो बहुत बड़ा है; परन्तु हमें जल बादलोंसे मिलता है, सलिये हमारे लिये तो बादल ही बड़े हैं। इसी प्रकार हमें तो त-महात्माओंके द्वारा ही लाभ हुआ है और होता है; इसलिये मारे लिये संत ही बड़े हैं।

विभिन्न सम्प्रदायोंमें बड़े-बड़े महापुरुष हुए हैं; उनके द्वारा अनेक नुष्योंको शिक्षा मिली है जिससे वे मनुष्य विशेषताको प्राप्त हुए हैं। जन महापुरुषोंसे मानव-जातिको ज्ञान प्राप्त हुआ है, उन महापुरुषोंकी हिमा जितनी गायी जाय, उतनी ही थोड़ी है; ऐसे महापुरुषोंकी रण-रज्जीका बड़ा महत्त्व है। उनकी चरण-रजका माहात्म्य कहनेका ात्पर्य उन महापुरुषोंकी महिमामें है कि वे जहाँ चलते-फिरते हैं, हाँकी रेणु भी पवित्र हो जाती है। जब उनके चरण-स्पर्शमात्रसे रेणु वित्र हो जाती है, तब वे स्वयं कितने पवित्र होते हैं!

यः सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम्।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः॥

(अ० रा० उत्तरकाण्ड पञ्चमसर्ग ६१)

(अर्थ) भगवान् राम कहते हैं कि मेरा सगुण-तत्त्व
निर्गुण-तत्त्वको जाननेवाला भक्त हो— वह मेरा ही स्वरूप
'सोऽहम्' मैं ही हूँ वह। वह संसारमें घूमता-फिरता है तो अ
चरणोंकी रज्जीसे त्रिलोकीको उसी प्रकार पवित्र करता है, जि
प्रकार सूर्य जिस प्रान्तमें जाते हैं उसीमें प्रकाश कर देते हैं।

इस श्लोकमें दृष्टान्त 'सूर्य' का दिया है। जैसे जहाँ
जाता है, वहाँ प्रकाश हो जाता है, दिन हो जाता है। संत-महापु
सूर्यसे भी विलक्षण हैं। सूर्य तो केवल बाहर प्रकाश करता
किन्तु सन्त-महापुरुषोंद्वारा तो साधारण मनुष्यको भी विलक्ष
ज्ञान-रूपी भीतरका प्रकाश प्राप्त हो जाता है। उसके भीतर
आँखें खुल जाती हैं। मैं क्या हूँ ?, कैसा हूँ ? तथा परमात्मा
है ?, क्या करना चाहिये ?, क्या नहीं करना चाहिये ? अ
बातोंका ज्ञान हो जाता है। होश आ जाता है। जैसे कोई आ
बेहोश हो और उसे अचानक होश आ जाय अथवा कोई
नींदसे जाग जाय— ऐसे ही गाढ़ अज्ञानमें डूबे प्राणीको म
ज्ञान हो जाता है। इस तरह सन्त-महापुरुषोंकी विशेष
होती है।

कुछ लोग सोचते हैं कि हम सन्तोंकी चरण-रज ले लेंगे
हमारा कल्याण हो जायगा; अतः यदि सन्त नहीं लेने देंगे
छिपकर अथवा चोरीसे ले लेंगे। भाई ! इससे कल्याण
होगा, उद्धार नहीं होगा। अगर उन (सन्त) की चरण-र
उद्धार हो जाय तो उस चरण-रजको इकट्ठा कर पोटली बाँध
कुएँमें डाल दिया जाय ताकि जो भी उस जलको पीयेंगे
सबका उद्धार हो जायगा; परन्तु यह बिलकुल फालतू (निरर्थ
बात है। धूलमें धूल है, अर्थात् धूलमें क्या पड़ा है ! तात्पर्य

है कि सन्तोंका इतना माहात्म्य है कि उनकी स्पर्श की हुई हवा, चरण-रज आदि परम पवित्र होते हैं। उनके दर्शन भी परम पवित्र करनेवाले होते हैं। पर मूल माहात्म्य तो भाई, उनके ज्ञानका है।

सर्वज्ञ मुनिने संक्षेप-शारीरिक-भाष्यमें लिखा है—

'यत्पादपङ्कजरजःश्रयणं विना मे
सन्नप्यसन्निव परः पुरुषः पुरासीत्।
यत्पादपङ्कजरजःश्रयणादिदानीं
नासीन्न चास्ति न भविष्यति भेद बुद्धिः॥'

'मैंने जबतक उन महापुरुषोंकी चरण-रज्जीका आश्रय नहीं लिया, तबतक होता हुआ भी, वह सच्चिदानन्दघन परमात्मा, नहींकी तरह था अर्थात् भगवान् है कि नहीं, पता नहीं—ऐसी दशा थी; परन्तु जब मैंने उनकी चरण-रज्जीको स्वीकार किया तो मालूम पड़ा कि— न भेद-बुद्धि थी, न है और न होगी।'

यहाँ चरण-रज्जीको स्वीकार करनेका तात्पर्य उनकी अनुकूलताको स्वीकार करना है।

सन्तोंकी कृपा कब होती है? उनके मनके अनुकूल बननेसे। जैसे बछड़ा आकर दूध पीने लगता है तो गायके शरीरमें रहनेवाला दूध थनोंमें आ जाता है, ऐसे ही जब कोई श्रद्धा-प्रेमपूर्वक सन्त-महापुरुषसे प्रश्न करता है तो उनका समस्त ज्ञान बुद्धि, मन और वाणीमें आने लगता है, टपकने लगता है। यह सब उनके अनुकूल बननेकी महिमा है, धूल अथवा मिट्टीकी महिमा नहीं है।

इसलिये भाई! वे महापुरुष जिस ज्ञानसे बने हैं, उनसे वह ज्ञान लेना चाहिये। जैसे कपड़ेके बाजारमें कपड़ा और साग-

पत्तीके बाजारमें साग-पत्ती मिलती है; ऐसे ही वास्तविक तत्त्व
उस तत्त्वको जाननेवाले सन्त जहाँ हैं, उस बाजारमें ही मिलेग
चरण-रज लेनेका तात्पर्य उस 'तत्त्व' को लेनेमें है, पर लोग र
लेनेमें लगे हुए हैं। अरे ! उनकी चरण-रज्जीका इतना माहात्म्य
तो उन स्वयंका कितना माहात्म्य होगा ? उनके 'ज्ञानका' कित
माहात्म्य होगा ? वे कितने विशेष जानकार होंगे ? वह जानक
हमें ग्रहण करनी चाहिये।

सज्जनो ! मेरे मनमें बहुत बातें आती हैं। आप विशेष ध्य
दें। आप सब-के-सब योग्य हैं, बुद्धिमान् हैं, पात्र हैं। मैं ऐसा न
मानता हूँ कि आप पापी हैं, अयोग्य हैं, अल्प-बुद्धि हैं, न
हैं— किन्तु आप इधर ध्यान नहीं देते, लक्ष्य नहीं करते— य
कमी है। आपकी केवल इस तरफ उत्कण्ठा नहीं है। अन्यथा
तत्त्व बहुत सुगमतासे प्राप्त हो जाय। जो महान् विभूति, मह
गुण, महान् अवस्था है; जिसकी शास्त्रोंमें, वेदोंमें, पुराणोंमें ब
भारी महिमा गायी गयी है, ऐसे तत्त्वको आप सब-के-सब प्र
कर सकते हैं, कब ? केवल इतना लक्ष्य हो जाय कि 'मैं उ
तत्त्वको कैसे प्राप्त करूँ ?' अर्थात् आप उस तत्त्वके लि
उत्कण्ठित हो जाओ। अपनी जिद, अपनी बुद्धिमानीके अभिमा
को छोड़ो, जिससे आपकी उत्कण्ठा देखकर सन्त-महात्मा द्र
हो जायँ, खुश हो जायँ तथा सोचें कि यह तत्त्वको चाहता
सन्तोंकी खुशी और प्रसन्नतामें बहुत विलक्षणता भरी हुई रह
है। इस प्रकारके कोई सन्त-महात्मा मिल जायँ तो उनके सा
हमें मेहनत नहीं करनी पड़ती।

केवल शिष्य बननेसे इतना लाभ नहीं होता, जितना
अधीन होनेसे, शरण होकर उत्कण्ठित होनेपर होता है। अर्जु

भी भगवान्‌से—**'शिष्यस्तेऽहम्'** 'मैं आपका शिष्य हूँ'—कहकर **'शाधि मां त्वां प्रपन्नम्'**— मैं आपकी शरण हूँ, मेरेको शिक्षा दीजिये—ऐसा कहा है। अर्थात् शिष्य बननेसे भी अधिक विलक्षणता शरण होनेमें है। उत्कण्ठा होनेपर ही वह विलक्षण चीज मिलती है।

जैसे छोटा बच्चा केवल माँका ही दूध पीता है, जल-अन्न आदि कुछ नहीं लेता; अगर वह रोगी हो जाय तो माँको दवा लेनी पड़ती है; उससे बालक ठीक हो जाता है; क्योंकि वह केवल माँका ही दूध पीता है। इस प्रकार केवल परमात्मतत्त्वको जाननेकी उत्क्रण्ठावाले साधक सन्त-महात्माओंकी कृपाके आश्रित रहते हैं, अपनी कुछ भी बुद्धिमानी नहीं लगाते, अपना कुछ भी अभिमान नहीं रखते। 'मेरा क्या और कैसे होगा'—ऐसी कुछ भी चिन्ता नहीं करते। वे सन्त-महात्मा जो कुछ कहें, समझावें— उसीके अनुसार जीवन बनाना है, ऐसा जिनका भाव हो जाता है; उन साधकोंके उद्धारके लिये उन सन्त-महात्माओंको उद्योग करना पड़ता है, अर्थात् उन साधकोंको मुफ्तमें वह तत्त्व प्राप्त हो जाता है। जिस प्रकार केवल माँका दूध पीनेवाले बच्चेको न भोजनकी और न दवाईकी आवश्यकता है; उसी प्रकार केवल सन्त-महात्माओंकी कृपाके आश्रित रहना ही उनकी चरण-रज्जी लेना है। उनके चरणोंकी रज्जीका, धूलका माहात्म्य नहीं है; प्रत्युत उनके अनुकूल बननेका माहात्म्य है।

'हम धूलसे भी नीचे हैं'—इस भावको लेकर उन (सन्त-महात्माओं) से हम बड़ी भारी (महान्) वस्तु ले सकते हैं। हम छोटे बनकर, जिज्ञासु बनकर, अपनी बुद्धिमानी, हठ छोड़कर केवल सन्त-महात्माओंके अधीन हो जावें तो वे हमें सन्त बना देते हैं। कहा गया है—

पारस में अरु सन्त में, बड़ो अन्तरो जान ।
वो लोहा कंचन करे, वो करे आप समान ॥

पारस और सन्तमें बड़ा अन्तर है। पारस लोहेको सोना बना सकता है। किन्तु वह सोना दूसरे लोहेको सोना नहीं ब सकता; परन्तु सन्त-महापुरुषोंकी कृपा प्राप्त किये हुए पुरुष तो ऐ सन्त बन जाते हैं कि वे दूसरे लोगोंको भी सन्त बना देते हैं। व सोना ही नहीं, पारसकी खान खुल जाती है।

एक बात और है कि धनी आदमी दूसरेको धनी नहीं बन चाहता। वह तो व्यापारकी बात भी दूसरेको बताना नहीं चाह किन्तु जो सन्त-महापुरुष हैं, उनको जो कुछ भी लाभ हुआ उसको वे सबको बताना चाहते हैं। उनके मनमें वह सब बताने बड़ी उत्कण्ठा होती है। उनकी बात कोई मान लेता है तथा उस अनुसार साधन करता है, तो वे सन्त-महात्मा बड़े खुश होते और उनकी इस खुशीमें ही जीवका कल्याण भरा होता है।

ऊपरकी सेवा करो, दण्डवत् करो, नमस्कार करो, र उठाओ, जूठन खाओ—ये सब फालतू बातें हैं, निकम्मी बातें अश्रद्धा पैदा करनेवाली बातें हैं, दुनियामें नास्तिकता पै करनेवाली बातें हैं। सन्त-महात्माओंके कहे अनुसार जीव बनायें उनके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तोंका पालन करें; ठीक उन अनुसार ही अपना जीवन बनायें— तो आपलोग दुनिया उद्धार कर सकते हैं।

उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये केवल उत्कण्ठा एवं भू होनी चाहिये। जैसे बालकके दूधकी भूख होनेपर उसका प्रब होता ही है। माँके दूध न आये तो अन्यत्रसे प्रबन्ध होग माँके दूधकी कमी भी हो सकती है; किन्तु भगवान्

सन्त-महात्माओंकी शक्ति तो अपार, अनन्त है, जिसका कोई पारावार नहीं है। इसके अलावा एक और विलक्षणता है कि सन्तोंका ज्ञान जितना अधिक खर्च होगा, उतना ही अधिक बढ़ता है। कहा गया है—

हे सरस्वती ! तेरा कोठार, भण्डार अथवा खजाना अपूर्व है, विलक्षण है। दूसरा खजाना ज्यों-ज्यों खर्च करते हैं, त्यों-त्यों नाश होता है, उसमें कमी आती है। पर तेरे खजानेमें खर्च करनेसे वृद्धि होती है। कोई व्यक्ति दूसरेको पढ़ाता है, तो उसके ज्ञानकी वृद्धि होती है। ब्रह्मविद्या तो इससे भी विलक्षण रीतिसे बढ़ती है, उमड़ पड़ती है। इसलिये चरण-रजका तात्पर्य उस तत्त्वको जाननेकी जिज्ञासा है।

जब सन्त-चरण-रज एवं सन्त-दर्शनका भी इतना माहात्म्य है तो वे जिस चीजसे इतने महान् हुए हैं, वह चीज कितनी महत्त्वपूर्ण होनी चाहिये। वह चीज हम सबको मिल सकती है। सन्त-महात्माओंकी लालसा रहती है उस चीजको सबको बाँट देनेकी। उस चीजको देनेकी जितनी उत्कण्ठा सन्त-महापुरुषोंमें होती है, उतनी लालसा लेनेवालेमें नहीं होती। ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार बालकके प्रति माँकी जितनी उत्कण्ठा होती है, उतनी माँके प्रति बालककी नहीं होती।

साधारण मनुष्यके भीतर अपने कल्याणकी उतनी चिन्ता नहीं होती, जितनी उन महापुरुषोंके भीतर उन मनुष्योंके कल्याणकी होती है। महापुरुष चाहते हैं कि जल्दी-से-जल्दी और सुगमतासे इनका कल्याण हो जाय। सन्त-महापुरुषोंके भीतर तो कल्याणका खजाना भरा पड़ा है, पर सच्चे हृदयसे चाहनेवाला चाहिये। भगवान्‌की कृपाके रहते हुए भी बिना उत्कण्ठाके, बिना

लालसाके भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो सकती।

आज संसारमें नास्तिकता फैल रही है। लोग ईश्वर सन्तोंको और शास्त्रोंको नहीं मानते हैं, इसका कारण यही है लोग असली तत्त्वकी तरफ तो ध्यान देते नहीं और नक बातोंका आचरण करते हैं—जैसे, जूठन खा ली, चरण-धूलि ली इत्यादि। इन ऊपरकी बातोंसे लाभ नहीं होता तो कहते हैं भाई ! सन्तोंकी चरण-रज और जूठनकी महिमा झूठी है; क्यो हमने इनका सेवन किया, किन्तु हमें तो कोई लाभ नहीं हुआ।

आजका प्रश्न था— सन्त-चरण-रजका तात्पर्य क्या है भाई, इसका तात्पर्य तो उस तत्त्वमें है, जो उन्होंने प्राप्त कर लि है। उस तत्त्वको लेना चाहिये।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

—::0::—

॥ श्रीहरिः ॥

जीव लौटकर क्यों आता है ?

४

श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्‌ने कहा है कि यह जीव साक्षात् मेरा ही अंश है—

'ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।'

(१५ । ७)

'यह मेरा अंश यहाँ जीवलोक अर्थात् संसारमें आकर जीव बना है।' और—

'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।'

(१५ । ६)

'मेरा परमधाम ऐसा है, जहाँ जानेके बाद वापस लौटकर आना नहीं पड़ता।' तो फिर जीवको भगवान्‌के धाममें जाना चाहिये। जैसे, कोई सन्तान अपने पिताके घर जाती है। इसी प्रकार जीवको भगवान्‌के धाममें जाना चाहिये। यह जीव पुनः संसारमें लौटकर क्यों आता है ?

अब आप ध्यान देकर इस प्रश्नका उत्तर सुनें। जैसे आप हम-सभी यहाँ सत्संगके लिये आये हैं और समय पूरा होनेपर यहाँसे चल देंगे। यदि जाते समय हमारी चद्दर भूलसे यहाँ छूट गयी या कोई भी चीज यहाँ रह गयी तो हमें उसे लेनेके लिये वापस आना पड़ेगा। इसी तरह इस जीवने संसारकी जिन-जिन चीजोंमें ममता कर ली; चाहे वे घर, परिवार, जमीन, रुपये कुछ

भी हों, उनके छूटनेपर ममताके कारण इसे लौटकर आना प है। संसारमें जिन वस्तुओंको अपना माना है, वहाँ लौटकर अ पड़ेगा। यह शरीर तो सदा रहेगा नहीं, अतः दूसरा शरीर ध करके आना पड़ेगा। अब किसी भी योनिमें जन्म लें, उसे उन वस्तुओंके पास आना पड़ेगा।

हमने एक कथा सुनी है। एक बार श्रीगुरु नानकजी महा कहीं जा रहे थे। उनके साथ उनके दो-चार शिष्य भी थे। वि शहरकी धान-मण्डीमेंसे होकर निकले। धान-मण्डीमें गेहूँ, बाजरा, मोठ, चना आदि अनाजके बहुत-से ढेर पड़े थे। इत एक बकरा आया और एक मोठकी ढेरीमेंसे मोठ खाने ल वहाँपर उस ढेरीका मालिक बैठा था। उसने बकरेके केश प लिये और उसके मुखपर डंडे मारने लगा। काफी मार-पीटके उसने उसके मुखसे दाने निकलवा लिये। इस दृश्यको देख श्रीगुरु नानकजी महाराज हँसे। साथमें चल रहे शिष्योंको आ हुआ। उन्होंने पूछा— 'महाराज ! बकरेके तो मार पड़ रही और आप हँस रहे हैं। सन्तोंकी हर क्रिया किसी प्रयोजनको ले होती है। अतः महाराज ! हमें बतायें, आप हँसे क्यों ?' श्रीनानकजी महाराज बोले—'देखो ! जो मार रहा है, वह बनि इस बकरेका बेटा है और यह बकरा इस बनियेका बाप है। इ पहलेके जन्ममें यह इस दूकानका मालिक था। इस दूका इसका बैठनेका स्वभाव था। भीतर दूकान और बाहर जो बरामदा है, इसीमें यह बैठा रहता था। इसलिये आजकल रातमें यह बकरा यहाँ ही बैठता है। इसको याद नहीं है। लेकि इसको यह जगह ही अच्छी लगती है। इसने बड़े-ब देवताओंकी मनौती करके इस पुत्रको पाया था। कमाया हु

बहुत-सा धन इसी बकरेका है, लेकिन आज थोड़ेसे दानोंमें भी इसका हिस्सा नहीं है। खानेके लिये आता है तो मार पड़ती है और मुँहसे दाने निकाल लिये जाते हैं। लोग फिर भी संग्रह करते हैं।'

यह जीव जिस किसी भी वस्तु या जगहमें आसक्ति, प्रियता या वासना रखेगा, उसे मृत्युके बाद चाहे कोई भी योनि मिले, उसी जगह आना पड़ेगा। पशु-पक्षी, चिड़िया, चूहे आदि उसी घरमें जाते हैं, जिसमें पूर्व-जन्ममें राग था।

'कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु।'

(गीता १३। २१)

ऊँच-नीच योनियोंमें जन्म होनेमें कारण है—गुणोंका संग, आसक्ति, प्रियता, वासना। जो जड़ चीजोंमें प्रियता रखेगा, उसको लौटकर आना पड़ेगा। जिसकी जड़ वस्तुओंमें आसक्ति या प्रियता नहीं और भगवान्‌के साथ प्रेम है, वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। इतनी विलक्षणता है कि अन्तकालमें भी भगवान्‌का स्मरण करनेवाला निःसन्देह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। अन्तकालमें भी याद कर ले तो बेड़ा पार है—

'अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥'

(गीता ८। ५)

अन्तकालके स्मरणसे भी यह जीव भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि इसका भगवान्‌से घनिष्ठ सम्बन्ध है। भगवान्‌का अंश होनेके कारण यह भगवान्‌के सन्मुख होते ही भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है। इसमें सन्देहकी कोई बात नहीं। फिर यह लौटकर क्यों आता है? इसमें खास कारण यह है कि संसारकी चीजोंमें अपनापन कर लेनेसे इसको विवश होकर यहाँ आना पड़ता है।

इस (जीव) का मन संसारमें खिंच जाता है तो भगवान् फिर वै
ही मौका दे देते हैं अर्थात् जन्म दे देते हैं। इसलिये जीवको उचि
है कि यहाँ रहता हुआ भी निर्लेप रहे। भीतरमें ममता, आसत्त
करके फँसे नहीं।

ऐसा माने कि ठाकुरजीका संसार है, ठाकुरजीका परिवार
ठाकुरजीके रुपये हैं, ठाकुरजीका घर है। हम तो ठाकुरजीका क
करते हैं। मुनीमकी तरह रहें। मालिक न बनें। जो काम क
उसका अहसान ठाकुरजीपर रखें कि महाराज ! हम आपका क
करते हैं। हमारा यहाँ क्या है ? परिवार आपका, घर आपका, ध
आपका, जमीन आपकी। यह ही सच्ची बात है, क्योंकि जब ज
थे, नंग-धड़ंग आये थे। एक धागा भी पासमें नहीं था और मरे
तो यह लाश भी यहीं पड़ी रहेगी। लाशको भी साथ नहीं ले ज
सकते, तो धन-सम्पत्ति, वैभव-परिवार साथमें ले जा सकें
क्या ?

साथमें लाये नहीं, साथमें ले जा सकते नहीं और यहाँ रह
हुए भी इन सबको अपने मन-मुताबिक बना सकते नहीं। आपक
प्रत्यक्ष अनुभव है कि आपके लड़के-लड़की आपका कहना न
मानते, स्त्रियाँ नहीं मानतीं, कुटुम्बी-जन नहीं मानते। तो सि
हुआ कि आप इनको अपने मन-मुताबिक नहीं बना सकते अ
जितने दिन चाहें साथमें रख नहीं सकते, बदल नहीं सकते
स्वभाव बदल दें या रंग बदल दें— यह आपके हाथकी बा
नहीं। फिर भी इनको कहते हैं—'मेरी चीजें'। ये 'मेरे' कैसे हुए
बताइये ? अतः मानना ही होगा कि ये सब मेरे नहीं हैं; भगवान्
दिये हुए हैं और भगवान्के हैं।

जैसे, आपको और हमें सत्संग करनेके लिये यह मकान दि

गया है। अब, यदि हम इसपर कब्जा कर लें— यह तख्त हमारा, बिछौना भी हमारा, माइक भी हमारा; क्योंकि हम इस तख्तेपर बैठे थे, इस माइकपर बोले थे। तो यह बेईमानी हुई या नहीं ? इसी तरह भगवान्‌ने हमें धन, सम्पत्ति, वैभव, कुटुम्ब आदि सेवा करनेके लिये दिये हैं। अच्छी तरह प्रबन्ध करो। सबको सुख पहुँचाओ। पर आप मालिक बनकर बैठ गये। क्या यह मालकियत सदा रहेगी ? ये अपने साथ सदा रहेंगे ? क्या हम इनके साथ रह सकेंगे ? क्या इनको अपने मन-मुताबिक बदल लेंगे ? क्या इनपर हमारा कुछ भी वश चलता है ? नहीं चलता। फिर भी हम इन्हें 'हमारे' कहते हैं।

वस्तुओंके साथ केवल 'अपनेपन' की मान्यता है। 'अपनापन' वास्तवमें है नहीं। केवल माना हुआ है। प्रभुके साथ 'अपनापन' वास्तवमें है, निश्चित है, केवल उनको भूले हुए हैं। प्रभु अपने होते हुए भी, हम उनको भूल गये, उनसे विमुख हो गये और संसार कभी अपना हुआ नहीं, हो सकता नहीं। उसको हमने अपना मान लिया। इसीलिये यहाँ लौटकर आना पड़ता है। अगर इनको आप अपना नहीं मानते तो आप यहाँ वापस नहीं आते। यहाँ लोग भिन्न-भिन्न जगहों, शहरोंसे आये हैं। सत्संगकी समाप्तिके बाद यहाँ कौन आयेगा ? जिसकी कोई चीज यहाँ रह जायगी, वही आयेगा। जिसकी कोई वस्तु यहाँ नहीं छूटेगी, वह क्यों आयेगा ? यदि संसारकी चीजोंको आप अपना मानेंगे, तो ये चीजें तो आपके साथ रहेंगी नहीं, लेकिन आपने इनके साथ जो 'अपनापन' कर लिया है, वह आप जबतक छोड़ोगे नहीं, तबतक छूटेगा नहीं। आप छोड़ दो तो यह अपनापन इस शरीरकी जीवित अवस्थामें ही छूट जायगा। जैसे, कोई साधु हो गया। साधु होनेके

बाद गृहस्थाश्रमसे कोई 'अपनापन' नहीं रहता। अब यदि अप
कुटुम्बके स्त्री, पुत्र, भाई आदि सभी सदस्य एक साथ मर जा
तो भी उस साधुको चिन्ता नहीं होती। अगर चिन्ता होती है, त
असली साधु हुआ नहीं, अभी सम्बन्ध जोड़ा हुआ है। असल
साधु है, त्यागी है, तो घरवाले सब-के-सब चौपट हो जायँ त
भी कोई चिन्ता नहीं होती। कारण कि यह दृढ़ता है कि हम उनके
नहीं, वे हमारे नहीं।

संसारकी सभी चीजोंको भगवान्‌की मानें। अब भगवान्‌क
काम करो। चिन्ता, भय कुछ नहीं रहेगा—

'तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं।।

(मानस, अयोध्या० १२९। १

भोजन नहीं, ठाकुरजीके भोग लगाया हुआ प्रसाद पावें
गहने, कपड़े कुछ भी धारण करें, तो प्रभुका प्रसाद मानकर धार
करें। प्रभुके प्रसादका बड़ा माहात्म्य है। अन्तःकरण निर्मल ह
जाता है। ममता, आसक्ति सब मिट जाती है। ठाकुरजीके आ
थोड़ा-सा पेड़ा या बतासा भोग लगा दें, वह परम पवित्र हो जात
है। लखपति और करोड़पति भी आपके हाथसे वह प्रसाद-कण
लेना चाहेंगे और बड़े प्रसन्न होंगे। क्या वे मिठाईके भूखे हैं
नहीं। वे ठाकुरजीका प्रसाद लेते हैं। क्योंकि अब वह ठाकुरजीक
पवित्र प्रसाद हो गया। क्यों ? क्योंकि अब आपकी उसमें ममत
नहीं रही। चाहे आप ही बाँटे; लेकिन वह आपका नही
ठाकुरजीका है।

आप, भाई-बहन कृपा करो ! अभी अपनी सभी चीजोंक
भगवान्‌की मान लो। हृदयसे मान लो कि हे नाथ ! यह स

कुछ आपका है। गहना, कपड़ा, भोजन, मकान आदि सब कुछ प्रभुका प्रसाद है। अब भगवान्‌की मर्जी हो वहाँ रखो। हम लौटकर क्यों आयेंगे ? हमारी कहीं ममता नहीं। कोई हमारा है ही नहीं। ऐसे कृपा करके भगवान्‌को सब कुछ दे दो। वास्तवमें सब कुछ भगवान्‌का ही है। हमने उसको अपना माना है। केवल मान्यता छोड़नी है। महाराज रघुने विश्वजित्-याग किया। संसारपर विजय कर ले और बादमें सर्वस्व दान कर दे—यह विश्वजित्-याग होता है। सज्जनो ! आप और हम— सब विश्वजित्-याग कर सकते हैं। हृदयसे सब वस्तुओंको भगवान्‌के अर्पण कर दें। शरीरको भी अपना न मानें। कोई वस्तु हमारी है ही नहीं—हृदयसे यदि ऐसा भाव कर लें, तो विश्वजित्-यज्ञ हो जायगा और कहीं जाना भी नहीं पड़ेगा।

लोग कहते हैं कि भगवान्‌की मायासे हम मोहित हो गये। भगवान्‌की मायासे मोहित नहीं हुए; लेकिन भगवान्‌की मायाको अपना मान लिया, इसलिये मोहित हो गये हैं। भगवान्‌की माया किसीको मोहित करती ही नहीं। वह तो सबका काम सुचारुरूपसे चले, ऐसी सुविधा देती है, कृपा करती है। परन्तु आप मिली हुई वस्तुओंपर कब्जा कर लेते हो। उन्हें अपना मान लेते हो। सज्जनो ! ये आपकी हैं नहीं, थीं नहीं और रहेंगी भी नहीं। अभी भी निरन्तर इनका वियोग हो रहा है। ध्यान दें, जितने दिन आप-हम इन वस्तुओंको अपना मानकर जी गये, उतना इनसे वियोग हो गया। यदि कोई चीज हमारे पास पचास वर्ष रहनेवाली है और दस वर्ष बीत गये, तो अब वह चीज पचास वर्ष हमारे पास रहेगी ? अब तो चालीस वर्ष ही रहेगी। इसलिये वियोग तो निरन्तर हो ही रहा है। जिस वस्तुको आप अपनी

मानते हैं, वह आपसे प्रतिक्षण अलग हो रही है। पहले अल
थी, बादमें अलग रहेगी और अभी वर्तमानमें भी अलग हो र
है। वस्तु कभी नहीं कहती कि 'तुम मेरे हो और मैं तुम्हा
हूँ।' आप कहते हैं कि यह मेरी है। अतः आपको लौटकर आ
होता है। घरने आपको मेरा नहीं कहा, वस्तुओंने आपको मेरा न
कहा और सच्ची पूछो तो कुटुम्बीजन भी आप जबतक जीते
तभीतक मेरा-मेरा कहते हैं। प्राण निकलनेपर जलाकर भस्म क
देंगे, फूँक देंगे—

स्वास थकां सब आस करै, स्वास गया अब काढ़ो रे काढ़ो
धरती को धन्न बताय दियो, अब नाख सनेती में बाँधो रे गाढ़ो
अड़ोस-पड़ोस के आप खड़े सब, कोऊ न कहवत राखो रे ठाढ़ो
ठेट मसाण पौंचाय दियो अब, रह गयी जान चल्यो गयो लाडो

फिर भी कहते हैं— यह मेरा! यह मेरा ! आपका क्या है
शरीर भी यहीं पड़ा रह जायगा। भाइयो, बहनो ! कृपा करो अ
हृदयसे कह दो कि यह सब कुछ भगवान्‌का है।

कुछ लोग कहते हैं कि ममता छूटती नहीं। आपकी छोड़नेक
सच्ची नीयत हो जाय तो भगवान् छुड़ा देंगे। उनको पुकारें कि
नाथ ! मैं इन वस्तुओंको अपना मानना चाहता नहीं। तो भगवा
कहेंगे कि बहुत ठीक है और ममता छूट जायगी। परन्तु हृदय
छोड़नेकी नीयत हो तब। यदि छोड़ना चाहते ही नहीं, तो मरनेपर भ
नहीं छूटेगी। भूत-प्रेत बनना पड़ेगा। वही पोशाक धारण किये उस
घरमें आता है, लोगोंको दीखता है। भूत-प्रेत बन जानेपर भी ममत
छूटेगी नहीं। इसलिये आपने जो सांसारिक वस्तुओंमें 'अपनापन
कर लिया है, यह संसारमें लौटकर आनेका खास कारण है। यह
बहुत बड़ी गलती है।

यह सब संसार परमात्माका है और मान लिया अपना—यह बेईमानी है, ईमानदारी नहीं है। भाइयो, बहनो, माताओ ! आप मानो तो सही। आप अपनी कही जानेवाली सब चीजोंको भगवान्की मानकर चलो तो वे सब भगवान्का प्रसाद हो जायँगी। फिर मस्त हो जाओ कि हम ठाकुरजीके प्रसाद पाते हैं। हमारे समान कौन बड़भागी है ? चीज चली जाय तो ठाकुरजीकी चीज चली गयी। अपनी मानेंगे ही नहीं। हाँ, रक्षा ठीक तरहसे करेंगे। अब बोलो मरनेमें भी मौज रहेगी कि नहीं। कबीरदासजी कहते हैं—

सब जग डरपे मरण से, मेरे मरण आनन्द।
कब मरिये कब भेंटिये, पूरण परमानन्द॥

'मेरे मरनेमें आनन्द है, क्योंकि अपने प्यारे प्रभुसे मिलेंगे।' अपने घर जायँगे। भगवान् हमारा घर है, देश है, परिवार है। हमारे वे हैं, हम उन्हींके अंश हैं। उन्हींकी जातिके हैं। उन्हींके सम्बन्धी हैं। आप और हम—सब भगवान्के हैं। यह देश, अपना देश नहीं है—

इण आँगणि— ये हे सखि, हम खेलण आये।
कई खेल्या कई खेल सी, कई खेल सिधाये॥

यह तो खेलनेका एक रंगमंच है, स्टेज है। इसपर खेलना है, बस। खेलकी चीजोंको 'अपना' मान लेते हैं, यह गलती है।

आज लोग कहते हैं कि अशान्ति है, दुःख है, सन्ताप है—क्या करें ? भैया ! आपने भगवान्की वस्तुको अपना मानकर जो बेईमानी की है, उसका दुःख तो भोगना पड़ेगा ही। इन चीजोंको अपना माना है, इस वास्ते अशान्ति है। जहाँ 'अपनापन' छोड़ा वहीं शान्ति—

'निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥'

(गीता २।७१

बहनो, माताओ ! आप घरमें रहते हुए कहो कि आज काम मैं करूँगी। आराम सबको दो। आपकी सास, ननद देवरानी, जेठानी जो भी घरके सदस्य हों—उनका काम आ करो। सासको चाहिये कि बहूसे कहे—'बेटा ! ठहरो, काम करूँगी। बहू कहे—राम !राम !! ऐसा कैसे होगा ? हमारे रहते आप बूढ़े-बड़ेरे काम करेंगे ? तो सास बोले—'बेटा ! मैं जीऊँ तबतक तो मुझे करना ही चाहिये।' बहू कहे—माजी ! आ काम करें और मैं बैठी रहूँ ? यह कैसे हो सकता है। आप चल जायँगी तो हम किसको काम करके दिखायेंगी ? इसलिये काम त हम करेंगी।' इस तरह काम करनेके लिये लड़ाई हो जाय घरोंमें देवराणी कहे कि मैं करूँगी। जेठाणी कहे कि मैं करूँगी। सुख आराम, प्रशंसा उनके लिये और घरका काम, परिश्रम अप लिये। फिर संसारमें आना नहीं होगा। अपना कुछ माना नहीं औ सबकी सेवा कर दी। अब क्यों आयेंगे यहाँ ?

घरमें काम करो। सेवा करो। सुख पहुँचाओ। अभिमान म करो। ममता मत करो। ममता आपकी चलेगी नहीं। आजसे सौ व पहले इन कुटुम्बियों और इन घरोंपर अपनी ममता थी क्या ? स वर्षों बाद रहेगी ? नहीं रहेगी। अभी भी निरन्तर मिट रही है। जित दिन बीत गये, उतनी सब चीजें अलग हो गयीं। उमर पूरी हो जायग तो राम-नाम सत्य है—बोल जायगी। तो चीजें आपकी कैसे हुईं पहले आपकी नहीं, पीछे आपकी नहीं, तो बीचमें आपकी कैसे हुईं हर पल आपसे बिछुड़ रही हैं। इन वस्तुओंके द्वारा सबकी सेवा करो आदर करो। सबको मान दो। घरमें रहते हुए निहाल हो जाओ।

जो संसारमें अपनापन (वासना) करेगा तो वह लौटकर नहीं आयेगा, तो कहाँ जायगा—

वासना यस्य यत्र स्यात् स तं स्वप्नेषु पश्यति।
स्वप्नवन्मरणे ज्ञेयं वासना तु वपुर्नृणाम्॥

जिसकी जहाँ वासना है, स्वप्नमें भी उसको वही याद आता है। स्वप्नकी तरह, मरनेपर भी वही याद आता है; क्योंकि वासना ही उसका शरीर है। किसीमें वासना ही नहीं रही तो यह (जीव) लौटकर संसारमें क्यों आयेगा ? अगर वासना रह गयी— थोड़ी धनमें, थोड़ी घरमें, थोड़ी पुत्रोंमें,तो यहाँ वापस आना पड़ेगा। यदि हमारा सम्बन्ध यहाँ किसीसे नहीं है, केवल भगवान्‌के साथ है। जीते रहें तो भगवान्‌के साथ और मरें तो भगवान्‌के साथ। तो हम भगवान्‌के पास ही जावेंगे। फिर यहाँ नहीं आना पड़ेगा।

एक राजकुँअर थे। स्कूलमें पढ़नेके लिये जाते थे। वहाँ प्रजाके बालक भी पढ़ने जाते थे। उनमेंसे पाँच-सात बालक राजकुँअरके मित्र हो गये। वे मित्र बोले—'आप राजकुँअर हो, राजगद्दीके मालिक हो। आज आप प्रेम और स्नेह करते हो, लेकिन राजगद्दी मिलनेपर ऐसा ही प्रेम निभायेंगे, तब हम समझेंगे कि मित्रता है, नहीं तो क्या है ?' राजकुँअर बोले कि अच्छी बात है। समय बीतता गया। सब बड़े हो गये। राजकुँअरको राजगद्दी मिल गयी। एक-दो वर्षमें राज्य अच्छी प्रकार जम गया। राजकुँअरने अपने मित्रोंमेंसे एकको बुलाया और कहा कि तुम्हें याद है कि तुमने कहा था—'राजा बननेके बाद मित्रता निबाहो, तब समझें।' 'अब तुम्हें तीन दिनके लिये राज्य दिया जाता है। आप राजगद्दीपर बैठो और राज्य करो।' वह बोला—'अन्नदाता ! वह तो बचपनकी बात थी। मैं राज्य नहीं

चाहता।' बहुत आग्रह करनेपर उस मित्रने तीन दिनके लिये राज्य स्वीकार कर लिया।

वह मित्र राजगद्दीपर बैठा और उस दिन खान-पान ऐश-आराममें मगन हो गया। दूसरे दिन सैर-सपाटा आदिमें लग रहा। रात हुई तो बोला—'हम तो राजमहलमें जायँगे।' सब बड़ी मुश्किलमें पड़ गये। रानी बड़ी पतिव्रता थी। वह मित्र तो अड़ गया कि सब कुछ मेरा है, मैं राजा हूँ तो रानी भी मेरी है। रानीने अपने कुलगुरु ब्राह्मण देवतासे पुछवाया कि अब मैं क्या करूँ? गुरुजी महाराजने कहा— बेटी! तुम चिन्ता मत करो, हम सब ठीक कर देंगे। गुरुजीने उस तीन दिनके लिये राजा बने मित्रसे पूछा कि आप महलोंमें जाना चाहते हैं तो राजाकी भाँति जाना होगा। इसलिये आपका ठीक तरहसे शृंगार होगा। उन्होंने भृत्योंको बुलाया और आज्ञा दी— महाराजके महलोंमें जानेकी तैयारी करो, शृंगार करो। नाईको बुलाया और कहा कि महाराजकी हजामत करो ठीक ढंगसे। ३-४ घण्टे हो गये, तब वह राजा बोला— ऐसे क्या देरी लगाते हो? तो नाई बोला— महाराज! राजाओंका मामला है, साधारण आदमीकी तरह हजामत कैसे होगी? हजामतमें लम्बी कर दी अर्थात् बहुत देर लगा दी। इसके बाद पोशाक पहनानेवाला आदमी आया। उसने बहुत देर पोशाक पहनानेमें लगा दी। उसके बाद इत्र-तेल-फुलेल आदि लगानेवाला आया। उसने देर लगायी। इस प्रकार शृंगार-शृंगारमें ही रात बीत गयी। अब सुबह हो गयी। अन्तिम दिन था। समय पूरा हो गया और राजगद्दी वापस राजा साहबको मिल गयी। राजा साहबने अब अपने दूसरे मित्रको बुलाया और आग्रहपूर्वक तीन दिनके लिये राज्य दे दिया और बोले कि

मैं, मेरी स्त्री, मेरा घर—ये सब तो मेरे हैं। मैं भी आपकी प्रजा हूँ। बाकी सारा राज्य आपका है। वह मित्र तीन दिनके लिये राजा बन गया।

राज्य मिलते ही उस मित्रने पूछा कि मेरा कितना अधिकार है ? मन्त्रीने जवाब दिया—'महाराज ! सारी फौज, पलटन, खजाना और इतनी पृथ्वीपर आपका राज्य है।' उसने दस-बीस योग्य अधिकारियोंको बुलाकर कहा कि हमारे राज्यमें कहाँ-कहाँ, क्या-क्या चीजकी कमी है, किसके क्या-क्या तकलीफें हैं— पता लगाकर मुझे बताओ। उन्होंने आकर खबर दी—फलां-फलां गाँवमें पानीकी तकलीफ है, कुआँ नहीं है, धर्मशाला नहीं है, पाठशाला नहीं है। उस राजाने हुक्म दिया कि सब गाँवोंमें जहाँ जो कमी है, तीन दिनमें पूरी हो जानी चाहिये। खजाञ्चीको कह दिया कि मकान, धर्मशाला, पाठशाला, कुएँ आदि बनानेमें जो भी खर्च हो , वह तुरन्त दिया जाय। राजाका हुक्म होते ही अनेक लोग राजाज्ञाके पालनमें लग गये। तीन दिन पूरे होते-होते विभिन्न स्थानोंसे समाचार आने लगे कि इतना-इतना काम हो गया है और इतना बाकी रहा है। जल्दी पूरा करनेका आदेश देकर, उस मित्रने राज्य वापस राजाको दे दिया। राजा बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि हम तुम्हें जाने नहीं देंगे। हमारा मन्त्री बनायेंगे। हमें राज्य मिला, लेकिन हमने प्रजाका इतना ध्यान नहीं रखा, जितना आपने तीन दिनमें रखा है। अब राजा तो नाम-मात्रके रहे और वह मित्र सदाके लिये, उनका विश्वासपात्र मन्त्री बन गया।

इसी प्रकार हमें बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था—ऐसे तीन दिनके लिये भगवान्‌की तरफसे राज्य मिला है। अब जो रुपया-संग्रह और भोग भोगनेमें लगे हैं, उनकी तो हजामत हो रही

है और जो दूसरे मित्रकी तरह सेवा कर रहे हैं, उनको भगवान् कहते हैं—

'मैं तो हूँ भगतन को दास, भगत मेरे मुकुट मणि ।।'

तो भाई हमारे पास जो भी धन, सम्पत्ति, वैभव आदि है, उसके द्वारा सबका प्रबन्ध करो, सबकी सेवा करो। यह राज्य तीन दिनके लिये मिला है। अब निर्णय अपनेको करना है कि हजामतमें समय खोना है या भगवान्‌का विश्वासपात्र बनना है, लक्ष्मीजी हमारी माँ है। भगवान् हमारे पिता हैं। निर्वाहके लिये लक्ष्मी माँसे ले लो; लेकिन लक्ष्मीजीको भोगना चाहते हैं, स्त्री बनाना चाहते हैं—यह पाप है। वह हमारी पूजनीया माँ है। सेवा भाव होगा तो माँ भी खुश होंगी और पिताजी भी खुश होंगे। फिर हमें संसारमें लौटनेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। पिताजीके धाममें हमारा सदा निवास होगा। हम वहाँके रहनेवाले हैं, यहाँ क्यों आयेंगे? हमारा यह लोक है ही नहीं; यह तो जीवलोक है। हमारा लोक तो हमारे प्रभुका धाम है। हम तो उसी लोकके हैं। कबीर साहेब कहते हैं—

मैं तो पूरबियो पूरब देश रो, म्हारी बोली लखै न कोय ।
म्हारी बोली जो लखै, धर पूरबलो होय ।।

मैं तो पूरब देशका, मेरी भाषा यहाँ कोई नहीं समझता। यहाँ सब पश्चिम देशके लोग हैं। मेरी बोली वही समझ सकता है, जो ठेठ पूरब देशका रहनेवाला हो।

मैं भगवान्‌का हूँ। केवल भगवान् ही मेरे हैं। सब चीजें भगवन्‌की हैं। मेरा कुछ नहीं है। ये बातें जो ठीक-ठीक समझ लेता है, उसको मरनेके बाद यहाँ लौटकर नहीं आना पड़ता; लेकिन जो संसारमें ममता रखता है और मर जाता है, तो उसे लौटना ही पड़ता है।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!

॥ श्रीहरिः ॥

श्रीमद्भगवद्गीता और भगवत्प्रेम

५

श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा बहुत विचित्र है, बड़ी ही विलक्षण है। उसके विषयमें मैं क्या कहूँ, मेरी वाणी इस विषयके वर्णनमें असमर्थ है। हमारे पास कोई ऐसे शब्द नहीं हैं, जिनसे हम गीताकी महिमा गा सकें। गीतामें इतने भाव भरे हुए हैं कि जिनका कोई पारावार नहीं है। एक मनुष्य जो कि माप और तौलमें आता है, उसके भी इतने गहरे भाव होते हैं कि उनका कोई जल्दी अन्त नहीं पा सकता। फिर भगवान्‌की तो बात ही क्या है—

हरि अनंत हरि कथा अनंता। ....

(मानस, बाल० १४० । ३)

भगवान् अनन्त, भगवान्‌के नाम अनन्त, भगवान्‌के तत्त्व-रहस्य अनन्त, फिर भगवान्‌के भावोंका अन्त कैसे आ सकता है? सज्जनो! भाइयो, बहनो!! यदि आप अपना कल्याण चाहते हैं, तो गीताजीका जरूर अभ्यास करें। मामूली-से-मामूली आदमी हो, चाहे बड़ा-से-बड़ा पण्डित हो— हरेकको गीतामें नयी-नयी चीजें मिलेंगी। साधारण पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी भगवान्‌के आश्रित होकर गीता पढ़ेगा, इसमें गहरा गोता लगायेगा तो उसको बहुत-सी नयी-नयी बातें मिलेंगी। ये बातें केवल पुस्तकोंकी नहीं हैं; मेरी देखी हुई और अनुभव की हुई हैं।

श्रीमद्भगवद्गीतामें कामके पाँच स्थान माने गये हैं—

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते । (३ । ४०)
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ । (३ । ३४)
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते । (२ । ५९)

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, इन्द्रियोंके विषय तथा 'स्वयम्' प्रकृतिके अंगके साथ सम्बन्ध मानकर जो 'मैं', 'मैं' करता है, 'स्वयंके' उस जड़ अंशमें काम रहता है। परमात्माके चिद् अंशमें काम नहीं रहता। काम जबतक इन्द्रियोंमें, अन्तःकरणमें तथा विषयोंमें रहता है, तबतक इससे विमुख होना कठिन है, इसलिये अन्तःकरणकी शुद्धिकी जरूरत है। लेकिन करणकी शुद्धि क्रियाकी शुद्धिमें हेतु होती है, करण-निरपेक्ष तत्त्वमें नहीं। करण संसारमें चलता है, परमात्मामें नहीं। करण-शुद्धिसे संसारका राग मिट जाता है तो तत्त्वका अनुभव होनेमें बड़ी सुगमता होती है।

उस तत्त्वको हम मन या बुद्धिके द्वारा नहीं पकड़ सकते—

'यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥'

इदंतासे जिस परमात्मतत्त्वकी उपासना होती है वह परमात्म-तत्त्व पकड़में नहीं आता अर्थात् परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिमें मन, बुद्धि, इन्द्रियादि करण नहीं बनते, ये तो असत्के त्यागमें हेतु हो सकते हैं। इसलिये इनकी शुद्धि तो आवश्यक है, लेकिन इनके द्वारा परमात्मतत्त्वको पकड़ना असम्भव है। जब ये करण कर्त्तातक भी नहीं पहुँच पाते तो कर्तृत्वरहित तत्त्वतक कैसे पहुँच जायेंगे ? जहाँ मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ आदि नहीं पहुँच सकते— ऐसा वह विलक्षण तत्त्व है।

उस तत्त्वकी प्राप्तिके लिये गीता एक विलक्षण बात बताती है। संसारमें मनुष्योंका जो आकर्षण है, उसको 'प्रेम' कहा गया है।

यह नियम है कि काम घटते-घटते नष्ट हो जाता है और प्रेम कभी घटता नहीं, वरन् प्रतिक्षण बढ़ता ही रहता है। भाइयो, बहनो ! इस तरफ ध्यान दें, संसारमें कितना ही राग हो, काम हो— वह तो घटेगा ही। जैसे, स्त्री-पुरुषका आकर्षण होता है, वह कुछ नजदीक आते ही मिटने लगता है। साथमें रहते-रहते उससे ज्यादा मिटता है। मिटते-मिटते वह आकर्षण आगे चलकर द्वेषमें परिणित हो जाता है। वृद्धावस्थामें स्त्रीको पति सुहातातक नहीं। राजस्थानी भाषामें एक सन्त कहते हैं—

बेटा-बहू भूँडा बोले, डाकी तूं तो काँई डोलै।
पड़यो रह पोल के ओलै, काँई थारो काम है॥

इस तरहसे वह कुटुम्बियोंको बुरा लगने लगता है। मेरेको एक सज्जन मिले। वे कहते थे कि पहले जो स्त्री मेरे पीछे खिंची चली आती थी, स्नेह करती थी, वही अब मुझे मारने लगी है। ऐसी नौबत तो बहुत जगह बजती है।

आजकलके लड़के-लड़की अपने मनसे आपसमें सम्बन्ध जोड़ लेते हैं और कहते हैं कि हम आपसमें प्रेम करते हैं, परन्तु इस प्रकारका प्रेम तो कुत्ते-कुत्ती भी करते हैं। इसका नाम प्रेम नहीं, काम है। अपनी जाति छोड़कर दूसरी जातिमें जिन्होंने ब्याह किया है, उनके आपसमें लड़ाई हुई है, यह मैंने देखा है। जिन्होंने अपनी मन-मर्जीसे विधवा-विवाह किया है, उनके बीचमें घोर कलह हुई है— ऐसे उदाहरण मेरे देखे हुए हैं। कहनेका तात्पर्य है कि हम कामके वशीभूत होकर कर्म करते हैं तो वहाँ द्वेष एवं कलह होगी ही।

भगवान् और भक्तके आपसमें कभी द्वेष या कलह नहीं होते। उनमें प्रेमकी कलह तो होती है, पर उसमें बड़ी विचित्रता,

अलौकिकता होती है। रास-पञ्चाध्यायीमें प्रसंग आता है कि भगवान् गोपियोंके इशारेपर सब काम करते हैं। भगवान् नाचते हैं तो गोपियोंमें कुछ घमण्ड आ जाता है। उस घमण्डको शान्त करनेके लिये और अपनापनको लेकर आये मनको बढ़ानेके लिये भगवान् वहाँ अन्तर्धान हो जाते हैं—

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥

भगवान्के अन्तर्धान होनेसे उनका घमण्ड तो उतर जाता है और जो मान, प्रेम है, वह शुद्ध हो जाता है। तात्पर्य है कि प्रेमके साथ जो घमण्ड होता है, कामना होती है, अपनेमें कुछ भी अभिमान आता है, उसे दूर करनेके लिये ही भगवान् अन्तर्धान होनेकी लीला करते हैं, जिससे भक्तोंका प्रेम शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है।

लोग कहते हैं कि भगवान्का प्रेम और संसारका राग—ये दोनों सहोदर हैं, साथके ही हैं। परन्तु ये दोनों साथके नहीं हैं इनमें बड़ा अन्तर है। स्त्रीमें जो राग, आसक्ति होती है, वह पहले बढ़िया दीखती है। न मिलनेतक जो राग होता है, वह मिलनेपर उतना नहीं रहता और मिल जानेपर कुछ समय बाद हटनेकी मनमें आने लगती है। जो राग कम होते-होते मिट जाता है, दूर हो जाता है, वह मिटनेवाला है, वह रहनेवाला नहीं है। भगवान्का जो प्रेम है, वह कभी कम नहीं होता, सदा रहनेवाला है। अतः प्रेमी भक्त, भगवत्स्वरूप ही हो जाता है। वह कभी स्वप्नमें भी भगवान्से दूर हो नहीं सकता। वह प्रेम बढ़ता ही जाता है। प्रेममें पहले अभेद होता है, फिर अभिन्नता होती है। अभिन्नता होते हुए भी श्रीभगवान् और

श्रीजी—ये दो हो जाते हैं। उनके बीचमें जो प्रेम होता है, उसको राग भी कहा है, अनुराग भी कहा है और महाराग भी कहा है। यह एक विलक्षण भाव है। इसके कहने और सुननेके सब लोग अधिकारी नहीं हैं। क्योंकि, साधारण मनुष्य उसको सुनकर स्त्री-पुरुष-सम्बन्धी आकर्षणके रूपमें देखेंगे और पापके भागी होंगे। जबतक विषयोंमें राग, आसक्ति तथा कामना है, तबतक मनुष्य भगवत्प्रेमका अधिकारी नहीं है। हाँ, ज्ञानके सब अधिकारी हो सकते हैं, परन्तु प्रेमके सब अधिकारी नहीं हैं।

प्रेमका विलक्षण तत्त्व है, जिसके वशमें भगवान् भी रहते हैं। प्रेमके भोक्ता भगवान् ही हैं, जीवमात्र भोग्य है— ऐसा वर्णन वैष्णव-शास्त्रोंमें आता है। प्रेमसे भगवान्‌को सुख मिलता है, उस सुखसे प्रेमी सुखी होता है। इसलिये उस भक्तिको ऊँचा माना गया है, जिसमें अद्वैत ज्ञानके बाद प्रेम होता है।

'भक्त्यर्थं कल्पितं द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।'

भक्तोंने श्रीजी और भगवान्‌के प्रेमकी विलक्षणताका वर्णन किया है—

'मिले ही रहत, मानो कबहुँ मिले ना।'

सदा मिले रहते हैं, लेकिन ऐसा आकर्षण होता है, मानो पहले कभी मिले ही नहीं।

श्रीशंकराचार्यजी महाराज लिखते हैं—

'दिने दिने नवं नवं नमामि नन्दसम्भवम्।'

भगवान् दिन-प्रतिदिन नये ही दीखते हैं। मालूम होता है कि अभीतक, कभी उनके दर्शन हुए ही नहीं। अभी ही मिले हैं। अभी विलक्षण दर्शन हुए हैं। यह प्रेम प्रतिक्षण वर्धमान है। हर क्षण बढ़ता ही रहता है।

संसारका आकर्षण घटता ही रहता है। संसारमें सुख होता ही नहीं; कभी हो सकता ही नहीं— यह अटल नियम है। मनुष्यका जहाँ कहीं भी आकर्षण हो—स्त्रीमें, पुरुषमें, भोजनमें, कपड़ोंमें, रुपयोंमें, मानमें, बड़ाईमें; उस आकर्षणका एक भभका दीखता है जोरदार। फिर घटते-घटते घट जाता है। फिर भभका दीखता है; फिर घटते-घटते घट जाता है और अन्तमें मिट जाता है। यह रह नहीं सकता। टिक नहीं सकता। भगवान्‌में प्रेम होनेपर कभी घटता नहीं, बल्कि बढ़ता ही जाता है। विलक्षण रीतिसे बढ़ता है। अलौकिक रीतिसे बढ़ता है।

भाई ! जबतक सांसारिक कामनाका त्याग नहीं करोगे, तब-तक उस प्रेम-राज्यमें नहीं पहुँच सकोगे। सच्ची बात तो यह है कि संसारमें राग रहनेपर भी भगवान्‌का प्रेम नहीं छूटता अर्थात् संसारमें कितनी ही आसक्ति हो जाय, कितने ही भोग मिल जायँ, कितने ही रुपये मिल जायँ लेकिन परमात्माका आकर्षण नहीं मिटता। उधर भगवान्‌में प्रेम हो जाय तो संसारकी आसक्ति टिकती नहीं अर्थात् सर्वथा मिट जाती है। क्योंकि सांसारिक आसक्ति नाशवान् है और परमात्माका प्रेम अविनाशी है। भोगी-से-भोगी, लोभी-से-लोभी आादमीके मनमें भी यह भाव रहता है कि मैं जीता रहूँ, मेरेको सुख मिले, मैं और भी जान जाऊँ। 'मैं जीता रहूँ हमेशा'—यह सत्-स्वरूप परमात्माकी इच्छा है। 'मेरेको सुख मिले'—यह आनन्दकी इच्छा है। 'मैं विशेष जान जाऊँ'— यह चित्‌की इच्छा है। यह सच्चिदानन्द (सत्-चित्-आनन्द) की इच्छा चाहे कितने ही सांसारिक भोग मिल जायँ, इन्द्रासन-जैसा सुख मिल जाय तो भी मिटेगी नहीं।

यह प्राणी भगवान्‌की तरफ लग जाय तो इसमें इतनी

विलक्षणता आ जाय कि अनन्त ब्रह्माण्डके रचयिता स्वयं श्रीभगवान् इसका आदर करने लगें—

'मैं तो हूँ सन्तन को दास, भगत मेरे मुकुटमणि।'

पहले मनुष्य भगवान्‌का भक्त बनता है, फिर भगवान् भक्तके भक्त बन जाते हैं, उनके दास हो जाते हैं।

जिन भोगोंके पीछे आप रात-दिन पड़े रहते हैं, उन भोगोंके त्यागके बिना आप जी नहीं सकते। इन भोगोंका त्याग करना ही पड़ेगा, क्योंकि भोग आपके सजातीय नहीं हैं। भोगोंसे जो थकावट होती है, वह नींदके बिना दूर नहीं हो सकती। कितना ही बड़ा भोगी हो, वह किसी भी भोगको आठ पहर लगातार नहीं भोग सकता। आप देख लो कोई करके। जिसके भोगकी ज्यादा इच्छा है, वह परीक्षा कर ले। जिसके रुपयोंकी इच्छा है— ऐसा अत्यधिक लोभी न रुपये खाता है, न खर्चता है, न दान-पुण्य करता है। करे कैसे ? बेचारा अत्यन्त लोभी जो है। उसको कह दिया जाय कि तुम्हारे सामने रुपयोंका ढेर लगा देते हैं। इस ढेरमेंसे तुम लगातार एक-एक रुपया उठाते चले जाओ। तुम जितना रुपया गिन लोगे, वह तुम्हारा। वह एक-एक रुपया उठाता चला जाय, तो आठ पहर भी लगातार नहीं उठा सकेगा। थक जायगा, नींद आ जायगी अथवा कहेगा कि मैं भोजन करूँगा। अब बन्द करूँगा। इसपर भी उसे रोटी खानेके बाद तुरन्त कह दिया जाय कि अब बैठ जाओ और रुपये गिनना शुरू करो तो लगातार नहीं बैठ पायेगा। सोना चाहेगा। उकता जायगा। परन्तु भगवान्‌का नाम लेनेवाला उकतायेगा नहीं। यह खास बात है।

मारवाड़, राजस्थानमें एक गाँव है, पावणी नाड़ी। वहाँ एक तलाईके ऊपर एक खेजड़ी वृक्षकी डालियाँ (शाखाएँ) आयी हुई

हैं। वहाँ एक सन्त रहते थे। बुढ़ापेमें साधु बने थे। उनके राम-नाम लेनेकी लगन लगी। नींद आती थी, तो वे उस खेजड़ीकी डालके ऊपर बैठ जाते और राम-नाम जपते। जब नींद आती तो पानीमें गिर पड़ते। इस तरह उन्होंने छः महीनेतक अपना हठ नहीं छोड़ा, तो नींदने मूर्तिमान् हो उनके सामने प्रकट होकर कहा—'दुष्ट ! मैं तेरे पास अब कभी नहीं आऊँगी।' उन्होंने कहा—'बहुत अच्छी बात, पधारो।' तात्पर्य है कि भजनमें नींद नहीं सुहाती और भोगी नींदके बिना रह नहीं सकता। भोगीको तो भोगोंसे वियोग करना ही पड़ेगा। बिना भोगोंके वियोगके भोग भोगनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है। परन्तु भगवान्की भक्ति, प्रेम निरन्तर बढ़ते हैं।

भाइयो ! उस तरफ आप लगे नहीं हो। जब लग जाओगे, तब जानोगे—

पहलो तीर कबीरे लाग्यो दूजो सेना नाई।
नामदेव के ऐसी लागी, घायल करमा बाई।
जिसके लागी है सोइ जाने, दूजा क्या जाने रे भाई।

घायलके घावमें कैसी पीड़ा होती है, उसको तो वह घायल ही जानता है। वह दूसरेको समझा नहीं सकता। एक आदमी एक साधुके पास गया और बोला—'आप इतने भजनानन्दी हो। आप हमें भगवान्का क्या रहस्य है ? भजनमें कैसा सुख है ? बताइये।' वे साधु बोले— 'भैया ! तुम भजन करके देख लो, तो तुमको मालूम पड़ जायगा।' वह आदमी बोला— 'भजन करनेके लिये तो हमारे पास समय नहीं है, आप ही बतला दीजिये कि वह सुख कैसा है ?' वे साधु बोले—'अरे भाई ! ऐसा नहीं होता। सुख क्या दिखाऊँ ? क्या भैंसा है, जो दिखा दूँ कि वह खड़ा है देख लो। तुम भजन करो तो आनन्द मिलेगा।' उस आदमीने जिद किया कि आप

बतला दें, तो हम भी लग जायँगे। ऐसे ज्यादा जिद किया तो बाबाजीने एक पत्थर उठाकर उस आदमीके मार दिया। तो वह बोला—'बाबा, पत्थर क्यों मारते हैं?' बाबाजी बोले—'अरे! तुम्हें दिखाते हैं।' क्या दिखाते हैं? वह बोला। 'दिखा नहीं सके तो मार-पीट करने लगे।' बाबाजी बोले—'क्या हुआ?' वह बोला—'पीड़ा हो रही है, आपने पत्थर मारा।' साधुने पूछा—'पीड़ा कैसी होती है? पीड़ा क्या होती है? मुझे बताओ। मुझे दिखाओ। मैं कहता हूँ—पीड़ा नहीं होती। हमें बताओ पीड़ा क्या है?' अब है किसीकी ताकत जो पीड़ा समझा दे, दिखा दे, बता दे? हमारे जो दर्द होता है, वह दूसरेको नहीं समझा सकते, तो जो आत्मतत्त्व करण-निरपेक्ष है, जहाँ बुद्धि भी नहीं पहुँच सकती, उस तत्त्वको, उस आनन्दको कैसे बताया जा सकता है? यह कोई खेल, तमाशा नहीं है।

भगवान्‌की तरफ हम चलेंगे, तब हमें भगवान्‌के रहस्यका पता चलेगा। मैंने पुस्तकें पढ़ी हैं। मेरेपर पुस्तकोंका असर पड़ा है। 'तत्त्व-चिन्तामणि' श्रीजयदयालजी गोयन्दकाकी लिखी हुई पुस्तक है। पहले 'कल्याण' पत्रिकामें हर महीने उनके लेख आते थे। मैं जानता नहीं था कि जयदयालजी कौन हैं? क्या हैं? कहाँ हैं? उनके लेखोंके पढ़नेसे मेरेपर ऐसा असर पड़ा कि ये कोई विलक्षण जानकार पुरुष हैं। एक लेखमें ऐसा लिखा हुआ था कि जिनको अपना कल्याण करना हो, वह किसी तत्त्वज्ञ महापुरुषके पास चला जाय और उसके पास रहकर उसके कहे अनुसार साधन करे। साधन करते-करते कुछ अनुभव न हो तो भी पूछता रहे और साधनमें लगा रहे। वर्षोंतक लाभ न दीखे तो भी साधन छोड़े नहीं, साधन करता रहे, तो उसे लाभ होता है। यह मैंने पढ़ा। इस प्रकारके लेख हर माह आते। बादमें सूचना छपी कि

इन लेखोंका संग्रह 'तत्त्व-चिन्तामणि' नामक पुस्तकके रूपमें छपेगा। तो मेरे मनमें उत्कण्ठा लगी कि कब ये लेख आवें और कब मैं पढ़ूँ ? परीक्षाके समय भी समय निकालकर, इस पुस्तकको बड़े शौकसे पढ़ता था। मैं जो आपसे बातें कहता हूँ, वे मैंने अच्छे-अच्छे सन्तोंसे सुनी हैं। अच्छी-अच्छी पुस्तकोंमें पढ़ी हैं। ये बातें बहुत बड़े-बड़े सन्तोंकी हैं। इनमें जो सार दीखे, वह आप ग्रहण करें। भूलें दीखें, वे मेरी समझकर छोड़ देवें। परन्तु आप करो, तब पता लगेगा; नहीं तो आप जान नहीं सकेंगे।

आजतकके इतिहासमें आप एक भी उदाहरण ऐसा नहीं बता सकते कि जिसकी भोगोंसे तृप्ति हो गयी हो। जब कि भगवान्‌को अनेक व्यक्ति प्राप्त होकर सदाके लिये तृप्त हो गये हैं—

'बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः।' (गीता ४। १०)

'ज्ञानरूप तपसे पवित्र बहुत-से भक्त मेरे भाव-(स्वरूप) को प्राप्त हो चुके हैं।'

बहुत-से भगवान्‌को प्राप्त हो गये हैं। यहाँ बहुवचनका प्रयोग हुआ है। भगवद्गीता सरलतासे उस 'तत्त्व' को समझाती है। संसारका काम करते हुए भगवान्‌की प्राप्ति हो सके— वह युक्ति गीतामें बतलायी गयी है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥ (९। २७)

'हे कुन्ती पुत्र ! तू जो कुछ करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर दे।'

व्यवहार करते हुए, व्यापार करते हुए, घरका काम करते हुए— लगन परमात्माकी हो। यह सब भगवान्‌का काम है तथा

भगवान्‌के लिये ही करता हूँ। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करता हूँ। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये भोजन करता हूँ। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये जल पीता हूँ। भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये सोता हूँ, अपने आरामके लिये नहीं सोयेंगे। हम अब अपने सुख भोगनेके लिये काम नहीं करेंगे। यह बात याद रहे तो आप जो कुछ भी करो, वह भजन हो जायगा। पाप, अन्याय, झूठ, कपट, बेईमानी, विश्वासघात आदि छोड़कर सरलभावसे भगवत्प्रीत्यर्थ कोई भी काम करें, उसी कामसे भगवत्प्राप्ति हो जाय। कितनी विलक्षण बात है। न साधु-बाबाजी होना, न घर छोड़ना, न कहीं भागना, न कहीं जाना। यह व्यवहारमें परमार्थकी कला गीताने सिखायी है। कितनी विचित्र बात बतायी है।

मैं एक दिन गीताका पाठ कर रहा था तो मनमें आयी कि जो पराभक्ति ज्ञानके बाद मिलती है, वही पराभक्ति गीताके प्रचारसे मिल जाती है—

'भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥' (गीता १८। ६८)

जो दूसरोंको प्रेमपूर्वक गीता पढ़ायेगा, गीता सुनायेगा, उसको मेरी पराभक्ति प्राप्त हो जायगी अथवा मेरेमें पराभक्ति करके गीता सुनायेगा तो मेरेको प्राप्त हो जायगा। वह पराभक्ति कितनी विलक्षण है, जिसके विषयमें भगवान्‌ने अठारहवें अध्यायके ४९ से ५५ तक सात श्लोक कहे हैं। वह ज्ञानकी परानिष्ठा है। उसके लिये कितना एकान्तमें रहना पड़ता है, ध्यान-परायण होना पड़ता है—तब वह पराभक्ति मिलती है। वही पराभक्ति गीताके प्रचारसे मिल जाती है।

गीता, परिवर्तन नहीं, परिमार्जनके लिये कहती है। आप जो कुछ भी काम करते हैं, उसमें निषिद्धकर्मका त्याग कर दें तथा कर्मको केवल भगवान्‌की प्रीतिके लिये करें। भगवान्‌की आज्ञाके

अनुसार करें, तो संसारमें सुख मिलेगा और परमात्माकी प्राप्ति भी हो जायगी।

चोखा मेला एक भक्त हुए हैं दक्षिणमें। वे जातिके चमार थे। कोई पशु मर जाता तो वे उसे खींचकर ले जाते थे। उनके शरीरमें बल कम था, इसलिये पशु खींचा नहीं जाता तो स्वयं भगवान् उनके साथ जोर लगाकर पशु खिंचवाते थे। तो ठाकुरजी मुरदे खींचनेके लिये भी साथ देते हैं। अब इससे छोटा काम आपके पास कौन-सा है ? छोटे-से-छोटे काम, बड़े-से-बड़े काम, क्रूर-से-क्रूर काम—ऐसे कामको करते हुए भगवान् मिल सकते हैं; परन्तु आप उन कामोंको शुद्ध बनाओ। अन्याय नहीं, झूठ नहीं, कपट नहीं, बेईमानी नहीं, सच्चाईके साथ, सबकी हित-इच्छा रखते हुए, बड़े प्रेमसे, आदरसे काम करो, तो उसी कामसे भगवान् मिल जायँ।

'स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥' (गीता १८।४६)

गीता अलौकिक ग्रन्थ है। इसका आप पठन-पाठन करो। मनन करो। गहरे भावोंको समझो। इसमें बहुत ही सुगम बातें सरलतासे समझायी गयी हैं। केवल आप सरल हृदयसे परमात्माकी प्राप्तिके लिये लग जायँ, तो जो काम कर रहे हैं, उसीसे आपको परमात्माका प्रेम प्राप्त हो जाय। ऐसी विलक्षण बातें गीतामें लिखी हैं। अब क्या बतायें। गीताकी बातें कहते-कहते मेरेको तृप्ति नहीं होती। उनके अर्थ करें, तो तृप्ति नहीं होती और मुझे तो इतना आता नहीं। मेरा तो मामूली अभ्यास है, फिर भी नये-नये अर्थ मिलते हैं। नयी-नयी विचित्र बातें दीखती हैं। ऐसी भगवद्गीता है, उसका आप सब अध्ययन करें।

नारायण ! नारायण !! नारायण !!!





नोट—विशेष जानकारीके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरकी पुस्तकोंका सूचीपत्र निःशुल्क मँगा



